चौखम्बा संस्कृत सीरीज
११८
***

अथ शिवप्रोक्तम्

# गन्धर्वतन्त्रम्

'ज्ञानवती'-हिन्दीभाष्येण विभूषितम्

भाष्यकारः सम्पादकश्च
**आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीः**
व्याकरणाचार्यः एम.ए.(संस्कृत), पीएच.डी., (लब्धस्वर्णपदकः)
शास्त्रचूडामणिविद्वान्
इमेरिट्स प्रोफेसर एवं अध्यक्षः,
संस्कृत विभागे
देवसंस्कृतिविश्वविद्यालये, गायत्रीकुञ्जशान्तिकुञ्जम्, हरिद्वारम्
(पूर्वाचार्यः) कलासंकायस्ये संस्कृतविभागे,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयस्य, वाराणसी

**चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी**

## २. विषयवस्तु

**प्रथम पटल**—गन्धर्वतन्त्र का प्रारम्भ मङ्गलाचरण के पश्चात् गाधिसुवन विश्वामित्र एवं अत्रिमुनि के पुत्र दत्तात्रेय के प्रश्नोत्तर से प्रारम्भ होता है । यज्ञ आदि के अनुष्ठान के बाद भी संसार से मुक्ति प्राप्त करने की सम्भावना न होने के कारण खिन्नमना विश्वामित्र से दत्तात्रेय ने कहा कि मैं आपको नन्दिकेश्वर से प्राप्त उस गन्धर्वतन्त्र का वर्णन सुनाऊँगा जिसे पार्वती ने शिव से सुना था । शिव ने कहा—मैंने जिस तन्त्र को पहले बतलाया वह तामस, राजस और सात्त्विक तीन प्रकार का है । तामस से नरक राजस से स्वर्ग और सात्त्विक तन्त्र से मोक्ष प्राप्त होता है । एक चतुर्थ तन्त्र भी होता है जो निष्फल होता है ।

**इस तन्त्र की परम्परा**—शिव ने कहा—सबसे पहले कृष्ण ने मुझसे प्राप्त किया । कृष्ण ने ब्रह्मा को बतलाया । मैंने इसे नन्दी को उपदिष्ट किया । फिर मैंने इसे पुष्पदन्त नामक गन्धर्व को दिया । इस प्रकार यह तन्त्र गन्धर्वों में फैल गया । ब्रह्मा से मुनियों ने प्राप्त किया । बृहस्पति से इन्द्र और शुक्राचार्य से दैत्यराज विरोचन को मिला । पुलस्त्य से उनके वंशजों ने प्राप्त किया । इस प्रकार यह तन्त्र पृथिवीतल पर आ गया ।

स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब नमुचि आदि दैत्यों से देवगण त्रस्त हो गये तब वे पितामह के पास रक्षार्थ गये । ब्रह्मा शिव के पास गये और स्तुति किये । भगवान् शिव निर्जन वन में प्रविष्ट होकर राक्षसों को मतिभ्रान्त करने के लिये ऐसे शास्त्रों की रचना की जिनको सुनने मात्र से राक्षस पतित हो गये । न्याय वैशेषिक सांख्य चार्वाक बौद्ध मीमांसा आदि शास्त्रों का मैंने ही तत्तद् रूपों से प्रवर्त्तन किया । परिणामस्वरूप यज्ञ याग आदि बन्द हो गये और देवता लोग निर्बल निस्तेज हो गये। उनके विष्णु लोक जाकर प्रार्थना करने पर विष्णु शिव के पास गये । उनके द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् शिव अपशास्त्र की रचना से विरत हो गये और शिवरचित उन तन्त्रों के पाठक एवं अनुयायी विष्णु की माया से मूढ़ होकर लक्ष्यच्युत हो गये ।

**द्वितीय पटल**—द्वितीय पटल में शक्ति अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की चर्चा की गयी है । चूँकि यह ब्रह्मा विष्णु और रुद्र नामक तीन देवताओं की नियामिका है अत: इसे त्रिपुरा कहा जाता है । आराधक के समक्ष धर्म अर्थ काम नामक तीन पुरुषार्थों को उपस्थापित करने के कारण भी इसे त्रिपुरा कहा जाता है । अत्यन्त

सुन्दरी होने से इसका नाम त्रिपुरसुन्दरी है। त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र के उद्धारक्रम में पहले वाग्भव कूट को बतलाया गया है—कएईलह्रीं। इसके जप से मनुष्य वागीश होकर सब कुछ प्राप्त कर लेता है। दूसरा कूट कामराज का है। इसका स्वरूप है—हसकहलह्रीं। तीसरा कूट शक्ति का है—सकलह्रीं। इस प्रकार तीनों कूटों के पन्द्रह अक्षरों को एक साथ रखने पर यह पञ्चदशी विद्या कही जाती है। इसी में पहले 'ह्रीं' जोड़ने पर यह षोडशी विद्या कहलाती है। वाग्भव कूट में से 'ए' 'ई' को हटाकर 'ह स' जोड़ने पर शेष दो कूटों के साथ यह लोपामुद्रा विद्या हो जाती है। वाग्भव कूट के स्थान पर कएकलह्रीं तथा शेष दो कूट मिलकर शाम्भवी विद्या होती है। इसी प्रकार क ए के बदले स ह कहकर कलह्रीं तथा शेष दो कूट मिलाकर शाक्ती विद्या बनती है। पञ्चदशाक्षरी विद्या में श्रीं ह्रीं जोड़ने पर यह सप्तदशाक्षरी विद्या होती है। सबसे उत्तम राजराजेश्वरी विद्या है। यह सोलह कूटों वाली है। इसका स्वरूप इस प्रकार है—१. श्रीं, २. ह्रीं, ३. क्लीं, ४. ऐं, ५. सौः, ६. ओं, ७. ह्रीं, ८. श्रीं, ९. कएईलह्रीं, १०. हसकहलह्रीं, ११. सकलह्रीं, १२. सौः, १३. ऐं, १४. क्लीं, १५. ह्रीं १६. श्रीं। इस प्रकार यह सोलह कूटों वाली विद्या है।

**तृतीय पटल**—इसमें पञ्चमी विद्या का वर्णन है। पृथिवी आदि पाँच तत्त्व पञ्चदेवात्मक हैं। ये तत्त्व पाँच देवों की शक्तियाँ हैं। उन्हें इस प्रकार जानना चाहिये।

| तत्त्व | शक्ति |
|---|---|
| पृथिवी | ब्रह्माणी |
| जल | वैष्णवी |
| तेज | रौद्री |
| वायु | ईश्वरी |
| आकाश | माहेश्वरी |

पृथिवी से लेकर प्रकृति तत्त्व तक पाँच कूट हैं। इन कूटों की पाँच देवतायें—कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमाला, त्रिपुरसुन्दरी और परा हैं। पाँचवी शक्ति परा परब्रह्म स्वरूपिणी है। इस पराशक्ति की उपासना के लिये साधक को समयाचार का पालक ज्ञानविशुद्धात्मा गुरुभक्त जितेन्द्रिय एवं गन्धर्वरूपवान् होना चाहिये। जो इस पञ्च कूटात्मिका महाविद्या को जानता है वह खेचर होता हुआ भोग के साथ मोक्ष प्राप्त करता है। पञ्चमी विद्या का स्वरूप इस प्रकार है—कएईलह्रीं हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, कहयलह्रीं हकलसह्रीं। यह विद्या भोगमोक्षप्रदा है।

इसी प्रकार महासौभाग्यसुन्दरी विद्या है । यह तीन कूटों वाली है । पहला सौभाग्य कूट दूसरा उक्त तीनों कूट और तीसरा कामबीज होता है । इसी विद्या के मध्य कूट का मध्यम कूट स्वप्नावती विद्या होती है । इस पञ्चमी विद्या के जप के साथ देवी की कौलमार्गी पूजा करने का बहुत अधिक फल होता है । स्वप्नावती विद्या का जप करने से सद्यः आकर्षण होता है । इसी प्रकार एकादशी विद्या के जप से भी महाफल का लाभ होता है । इस विद्या का स्वरूप है— कलह्रीं कहलह्रीं सकलह्रीं ।

**चतुर्थ पटल**—इस पटल में त्रैलोक्यमोहन कवच का वर्णन है । यह राजराजेश्वरी देवी का कवच है । इससे चारो पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं । यहाँ अट्ठाईस वर्णों वाली विद्या की चर्चा है—ऐं क्लीं सौः हस्रैं हसकलरीं हस्रौः षोडशी राजराजेश्वरी विद्या श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः । इसके पश्चात् तत्तत् अङ्ग आदि में रक्षण की चर्चा है । यह त्रैलोक्यमोहन कवच कहीं भी दुर्लभ है । यह अत्यन्त गोपनीय है । इसे परशिष्य कृपण भक्तिहीन चुम्बक, परहिंसारत दम्भ कुशील को और यहाँ तक कि भक्तिरहित स्वपुत्र को भी नहीं बतलाना चाहिये । जो गुरु ऐसे व्यक्ति को बतलाता है उसकी आयु तथा कीर्त्ति नष्ट हो जाती है और शिव की आज्ञा से योगिनियाँ उसे मार डालती हैं ।

इस कवच की धारणा करने के बाद श्रीचक्र में देवी की पूजा करनी चाहिये। यह पूजा शक्ति के साथ की जाती है अकेले नहीं । शिवरूप में अपना ध्यान कर देवी का ध्यान करना चाहिये तथा शक्ति एवं शिव में अद्वैत भाव के साथ साधना करनी चाहिये । ऐसा करने वाला अष्टसिद्धियों का स्वामी बनकर त्रैलोक्य में विचरण करता है । इस पटल के अन्त में यन्त्र-रचना की विधि का वर्णन कर कवच को गोपनीय रखने का निर्देश दिया गया है ।

**पञ्चम पटल**—इस पटल में श्रीचक्र का वर्णन है । सच्चिदानन्दरूपिणी शक्ति जब अपनी इच्छा से अपने को विश्वरूप में व्यक्त करना चाहती है तब वह सर्वप्रथम बिन्दु के रूप में आविर्भूत होती हैं । चक्ररचना के क्रम में किसी धातु के चौकोर पत्र पर सबसे पहले बिन्दु बनाया जाता है । इसके पश्चात् चक्र के शेष भाग की रचना की जाती है । इस चक्र का स्वरूप निम्नलिखित श्लोक से जानना चाहिये—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म-<br>
मन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।<br>
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च<br>
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥

(सबसे पहले बिन्दु उसके बाहर शाक्त त्रिकोण फिर अष्टकोण फिर दो दशार

तत्पश्चात् चतुर्दशकोण उसके बाहर अष्टदल कमल फिर षोडशदल कमल उसके बाद तीन वृत्त और फिर तीन भुपूर बनाये जाते हैं ।)

त्रिपुर सुन्दरी के इस चक्र के बनने के बाद इसकी पूजा का वर्णन किया गया है । यह कहा गया कि तीन वृत्तों की पूजा नहीं करनी चाहिये । यह यन्त्र महात्रिपुरसुन्दरी का शरीर है । शरीर तीन प्रकार का होता है—भौतिक अर्थात् स्थूल, मनोमय अर्थात् सूक्ष्म और पर अर्थात् ज्ञानमय । यह यन्त्र भगवती का मनोमय शरीर है । इस यन्त्र में शिव की गोद में बैठी हुई त्रिपुरा का ध्यान आवाहन पूजन आदि करना चाहिये । इसके बाद अन्य अङ्ग देव-देवियों की पूजा तत्तत् स्थानों में करने के बाद आवरण-पूजा करने का विधान है । इसके पश्चात् काम्यप्रयोग का वर्णन है जो सोलह दिनों का अनुष्ठान होता है । चक्र में ब्रह्मा विष्णु शिव की रेखाओं में स्थित देवताओं का वर्णन करने के बाद सर्वाशापरिपूरक आदि चक्रों तथा तत्रस्थ देव-देवियों का वर्णन कर चक्र में स्थित कामरूप पूर्णगिरि जालन्धर एवं ओड्यान पीठों की चर्चा के साथ यह कहा गया है कि सृष्टिक्रम स्थितिक्रम एवं संहारक्रम से इनकी पूजा महागुह्य है । साधक के द्वारा सहस्रार में की जाने वाली पूजा सर्वोत्तम होती है । द्वितीय कोटि की पूजा शिव एवं कृष्ण के द्वारा सर्वदा की जाती है ।

**षष्ठ पटल**—इस पटल में सर्वप्रथम 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' के नियम के अनुसार अशुद्ध शरीर को कर्मयोग द्वारा देव शरीर बनाने की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले गुरु का ध्यान करने की बात कही गयी है कि वे सहस्रदल कमल के ऊपर विराजमान हैं । श्वेत वस्त्र से विभूषित वे वरद एवं अभय मुद्रा से युक्त हैं । ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें, हसक्षमलवरयूं, हसखफ्रें, हसक्षमवरलईं ह्सौः स्हौः आनन्दनाथपादुकां पूजयामि मन्त्र से गुरु की तथा आनन्दनाथ के बदले अम्बा कहकर गुरुपत्नी की पूजा करनी चाहिये । विधिपूर्वक गुरुपूजा के बाद गन्धर्वतन्त्र के प्रस्तुत पटल में वर्णित १९-२५ तक के सात श्लोकों के द्वारा गुरु की स्तुति करनी चाहिये ।

इसके पश्चात् इस पटल में योग का वर्णन है । कुण्डली जागरण ही योग का प्रारम्भ है । इसी के बाद मन्त्रसिद्धि होती है और फिर योगाभ्यास से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है । मूलाधार में स्थित जीव का सहस्रारस्थ परमात्मा से ऐक्य ही योग है । इसके लिये यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि नामक आठ योगाङ्गों का अभ्यास करना पड़ता है । आगे चलकर इन अष्टाङ्गों का विस्तार से वर्णन करते हुये समाधि की अत्यन्त विस्तार के साथ चर्चा की गयी है । जिस प्रकार घटाकाश और महाकाश का भेद भ्रान्त है उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का भेद भी भ्रम है । दोनों के ऐक्य की संवित् की

उत्पत्ति का नाम समाधि है । इसी विज्ञान से मुक्ति सम्भव है । इसके अनन्तर शरीरस्थ नाड़ी एवं षट्चक्र की चर्चा की गयी है । शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाडियाँ हैं उनमें दश मुख्य हैं । दश में भी इडा पिङ्गला सुषुम्ना प्रधान हैं । तीनों में सुषुम्ना सर्वप्रधान है । यह मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक मेरुदण्ड के मध्य से होकर जाती है । मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग है । यह ब्रह्मा के द्वारा अधिष्ठित है। उसके ऊपर स्वाधिष्ठान और उसके ऊपर मणिपूरचक्र है । यहाँ बीच में बाणलिङ्ग है । उसके ऊपर अनाहत चक्र है । इसके अधिष्ठातृ पुरुष रुद्र हैं । उसके ऊपर विशुद्ध चक्र है । उसके ऊपर आज्ञा चक्र में आत्मा रहता है । आज्ञा के ऊपर गुरुचक्र है । उसके ऊपर कैलास ओर उसके ऊपर बोधिनी है । अन्त में सहस्त्रदल कमल है ।

अन्त में एक दूसरे प्रकार की समाधि का वर्णन कर पटल की समाप्ति की गयी है ।

**सप्तम पटल**—सप्तम पटल में नित्यकर्म की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले स्नान एवं सन्ध्या का वर्णन है । स्नान तीन प्रकार का होता है—मानसस्नान, बाह्यस्नान और आन्तरस्नान । जो साधक सदा शुद्ध मन वाला है अत एव देवी की पादुका का स्पर्श कर निरन्तर निर्विकल्प भाव में रहता है उसकी यह स्थिति मानसस्नान कही जाती है । बाह्यस्नान में शरीर को मन्त्र से अभिषिक्त करते हैं । आन्तरस्नान वह होता है जिसमें साधक प्राणायाम के साथ शक्ति को परशिव के साथ सङ्गमित कराकर उसके द्वारा उत्पन्न अमृत में निरन्तर स्नान करता रहता है । हृदय-कमल नामक पुष्कर तीर्थ में किया जाने वाला स्नान भी आन्तर स्नान होता है । इसी प्रकार सन्ध्या भी तीन प्रकार की होती है। ध्यानयुक्त होकर सदा अपने को इष्टदेव से अभिन्न समझना मानसी सन्ध्या कहलाती है । एक सन्ध्या कौलिकी होती है जिसमें बाह्यकाल की अपेक्षा नहीं होती । जिस काल में शिव और शक्ति का संयोग होता है वह कौलमार्गी जनों की सन्ध्या कही जाती है । बाह्यसन्ध्या सर्वजन प्रसिद्ध है ।

शूद्र आदि के मोक्षोपाय के विषय में कहा गया है कि त्रिपुरागायत्री की उपासना से पतित, नारी, शूद्र, व्रात्य आदि भी ब्राह्मण हो जाते हैं । त्रिपुरा गायत्री का मन्त्र है—त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् । तदनन्तर तीन प्रकार के तर्पण की चर्चा की गयी है । आन्तर, मानस एवं बाह्य तर्पण के स्वरूप-निर्वचन के पश्चात् सूर्यार्घ्य मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है । मन्त्र है—ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं नमो नमः ।

**अष्टम पटल**—अष्टम पटल की विषयवस्तु यागभूमि भूतशुद्धि आदि है । जो भूमि केश कीट आदि से रहित, स्निग्ध हो, ऊभड़ खाभड़ न हो, अति नीच

अति उच्च न हो वह याग के योग्य होती है । साथ ही उसे धूल कीचड़ से युक्त, प्राणियों से सङ्कुल, वृक्ष आदि से व्याप्त ऊसर एवं खेती वाली नहीं होना चाहिये । उसके पास जलाशय तथा पुष्प उद्यान होना चाहिये । ऐसी यागभूमि के बाहर देवताओं का पूजन एवं प्रणाम कर साधक अन्दर प्रवेश करे । 'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृत्सर्वभूतेभ्यो हूं स्वाहा' इस मन्त्र से भूतशुद्धि करने के बाद 'ऐं क्लीं सौः अस्त्राय फट्' से मण्डप के अन्दर अक्षत फेंक कर 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से वेदी पर पूजा करनी चाहिये । उसके बाद साधक बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर मण्डप में प्रवेश करे और विघ्नों का उत्सारण करे । वर्मबीज 'हुम्' से यज्ञभूमि को देखकर अस्त्र मन्त्र 'अस्त्राय फट्' से प्रोक्षण करना चाहिये । अवलोकन और स्पर्शन से उस भूमि के समस्त दोष दूर हो जाते हैं । पृथिवीगत दोष को दूर करने के लिये वहाँ 'क्लीम्' लिखना चाहिये । याग के लिये उपयोगी द्रव्यों को तब तक ढँककर रखना चाहिये जब तक देवी का आवाहन और स्थापन न हो जाय ।

आसन के विषय में कहा गया है कि यह न अति उच्च और न अति नीच होना चाहिये । आसन और अर्घ्यपात्र टूटा-फूटा नहीं होना चाहिये । विभिन्न प्रकार की सिद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के आसन प्रयोग में लाने का विधान है । दो हाथ से अधिक लम्बा डेढ़ हाथ से अधिक चौड़ा और तीन अङ्गुल से अधिक ऊँचा आसन वर्जित है । 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' से आसन की पूजा कर उस पर पद्म या स्वस्तिक या गोमुख आदि किसी भी विहित आसन से बैठना चाहिये । सुष्ठु अलंकृत होकर मुख में ताम्बूल लेकर साधक तत्तद् दिशाओं में गुरु गणेश दुर्गा आदि की पूजा करे । गोरोचन आदि के मिश्रण से श्रीचक्र की रचना कर उसके सामने पाद्य अर्घ्य आदि रखे । कलश रखकर अग्नि की कलाओं के साथ उसकी पूजा करे । तत्पश्चात् सूर्य कलश को रखकर उसकी भी उसकी कलाओं के साथ पूजा कर आनन्दभैरव की भैरवी के साथ पूजा करनी चाहिये ।

इसके पश्चात् शरीर-शुद्धि की चर्चा की गयी है । इस क्रम में कहा गया है कि यं रं वं वर्णों से शरीर के शोष दाह और प्लावन की भावना करनी चाहिये । फिर तीन प्राणायाम कर योनिमुद्रा दिखानी चाहिये । तत्पश्चात् मन में सूर्य चन्द्र और अग्निमय तीन पुरों का ध्यान करे । उन्हें एक में मिला ध्यान कर उस बिन्दुस्वरूप तेज में एक क्षण डूबकर रक्तसमुद्र का ध्यान करना चाहिये । उस समुद्र में रक्त सिंहासन पर कोटिबालसूर्य के समान अरुणवर्णा त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करने का विधान है । वह देवी चतुर्भुजा है । नीचे के दोनों हाथों में धनुष-बाण और ऊपर के दोनों हाथों में सृणि (= अङ्कुश) और पाश धारण की हुई है । त्रिनेत्रा उस देवी का अपने से अभिन्न रूप में चिन्तन करना चाहिये । ध्यान

का मन्त्र है—ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इसके बाद 'ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष' मन्त्र से हृदय का स्पर्श करते हुए रक्षा करनी चाहिये तथा ताली बजाकर दिग्बन्ध करना चाहिये ।

**नवम पटल**—इस पटल में करशुद्धि विद्या एवं न्यास का वर्णन है । न्यास के पहले करशुद्धिकरी मन्त्र का जप कर हाथों को मलना चाहिये । अं आं सौः यह मन्त्र है । इस मन्त्र को पढ़ते हुए दाँयें हाथ में रक्त फूल लेकर मले फिर उसे बायें हाथ में रखकर मलने के बाद कामबीज से पोंछ कर वाग्भवबीज से सूँघने के बाद शेष बीज (= आं) से उस पुष्प को ईशान दिशा में फेंक देना चाहिये । इस अनुष्ठान से हाथ एवं अङ्गुलियों की शुद्धि होती है । इसके बाद ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ।

ऋषि छन्द देवता के नाम के न्यास के बिना किया गया जप निष्फल होता है। इस करशुद्धिकरी विद्या के ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द पंक्ति और देवता त्रिपुरसुन्दरी है । इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिये । इसके पश्चात् अन्तर्मातृका न्यास के क्रम में कण्ठ हृदय नाभि लिङ्गमध्य मूलाधार भ्रूमध्य में न्यास किया जाता है । बहिर्मातृका न्यास का रूप अकार से लेकर क्षकार तक का है । उसका प्रारम्भ 'क्लीं अं नमः' इत्यादि से होता है । यह न्यास ललाट से लेकर दोनों पादतल तक किया जाता है । देवताओं ऋषियों और राक्षसों के सारे मन्त्र मातृकामन्त्र में सदा स्थित रहते हैं । यह त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र सर्वदेवमय सर्वमन्त्रमय है । यह चतुर्विध पुरुषार्थ को देने वाला है । मातृका से सम्पुटित मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल को जो पीता है वह वाग्मी पण्डित हो जाता है । इस अभिमन्त्रण में पहले स्वरों को बाद में व्यञ्जनों का उच्चारण होता है । कुम्भक पूरक रेचक प्राणायाम के साथ जल पीने से साधक समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करता है ।

**दशम पटल**—इस पटल में षोढान्यास का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी राशि एवं पीठ इन छह से किये जाने वाले न्यास को षोढा न्यास कहते हैं ।

**गणेशन्यास**—इसमें पचास गणेशों का उनकी शक्तियों के साथ न्यास किया जाता है । पचास वर्णों से एक-एक गणेश के शरीर के पचास अङ्गों में न्यास करने के विधि है । उदाहरण के लिये अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमः से ललाट में, आं विघ्नराजाय ह्रियै नमः से मुख में, इसी प्रकार अन्य अङ्गों में भी न्यास करना चाहिये।

**ग्रहन्यास**—इसमें स्वरों के साथ 'सूर्याय नमः' कहकर हृदय में, प वर्ग से सोम का भ्रूमध्य में, कवर्ग से मङ्गल का दोनों नेत्रों में, चवर्ग से बुध का हृदय

में, टवर्ग से बृहस्पति का कण्ठ में, तवर्ग से शुक्र का ग्रीवा में, पवर्ग से शनि का नाभि में, शवर्ग से गुदा में राहु का और ळ क्ष से केतु का दोनों पैरों में न्यास किया जाता है । सभी वर्णों के साथ चन्द्रबिन्दु लगा रहता है ।

**नक्षत्रन्यास**—पचास वर्णों को अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों के साथ जोड़कर नक्षत्रों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करते हुए 'नमः' कहना पड़ता है । साथ ही शरीर के सत्ताईस अङ्गों का स्पर्श करना पड़ता है । इस क्रम में कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार अक्षरों का उच्चारण किया जाता है । उदाहरण के लिये—अं आं अश्विन्यै नमः इति ललाटे । इं भरण्यै नमः इति दक्षनेत्रे । ईं उं ऊं कृत्तिकायै नमः इति वामनेत्रे । ऋं ॠं ऌं ॡं इति दक्षकर्णे इत्यादि । इस क्रम से अन्त में क्षं हं अं अः रेवत्यै नमः इति वामपादे । यह नक्षत्रन्यास का क्रम है ।

**योगिनीन्यास**—योगिनियों की संख्या सात है । उनके नाम डाकिनी राकिनी लाकिनी काकिनी शाकिनी और याकिनी है । इनके वर्ण स्वरूप अस्त्र और भोज्य पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं । इनके मन्त्र तथा मन्त्रों को पढ़कर न्यस्त होने वाले स्थान भी भिन्न-भिन्न हैं । उदाहरण के लिये डाकिनी का वर्ण शुक्ल, एक मुख, तीन नेत्र, अस्त्र तलवार, पेय मद्य, भोज्य पदार्थ पायस, न्यस्य स्थान कण्ठ है । डाकिनी का मन्त्र इस प्रकार है । अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः डां डीं डमलवरयूं डाकिन्यै नमः डाकिनि त्वग्धातुगते चतुष्षष्टिलक्षकोटि-योगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे । इसी प्रकार अन्य योगिनियों के भी विषय में जानना चाहिये । प्रत्येक योगिनी के मन्त्र में कुछ अक्षर और शब्द प्रकरणानुसार बदल दिये जाते हैं । जैसे राकिनी के मन्त्र में कण्ठस्थ तथा तालुस्थ स्वर ठं वर्ण रा रीं लमलवरयूं............मांसधातुगते षोडशलक्ष............इत्यादि ।

**पीठन्यास**—पीठन्यास में पचास पीठों का शरीर के पचास अङ्गों में न्यास करने का वर्ण है । ये पीठ हैं—१. कामरूप, २. वाराणसी, ३. नेपाल, ४. पौण्ड्रवर्धन, ५. पुरस्थिर, ६. चरस्थिर, ७. पूर्णशैल, ८. अर्बुद, ९. काश्मीर, १०. कान्यकुब्ज, ११. आम्रातकेश्वर, १२. एकाम्र, १३. त्रिस्रोत, १४. कामकोट्ट, १५. कैलास, १६. भूतनगर, १७. केदार, १८. श्रीपीठ, १९. ओङ्कारेश्वर, २०. जालन्धर, २१. मालव, २२. कुलान्तक, २३. देवमातृक, २४. गोकर्ण, २५. मारुतेश्वर, २६. अट्टहास, २७. विरजा, २८. राजगृह, २९. कोल्लगिरि, ३०. एलापुर, ३१. कालेश्वर, ३२. प्रणव, ३३. जयन्तिका, ३४. उज्जयिनी, ३५. क्षीरिका, ३६. हस्तिनापुर, ३७. उड्डीश, ३८. प्रयाग, ३९. षष्ठीश, ४०. मायापुर, ४१. जलेश्वर, ४२. मलय, ४३. श्रीशैल, ४४. मेरु,

४५. महेन्द्रगिरि, ४६. वामन, ४७. हिरण्यपुर, ४८. महालक्ष्मी, ४९. उड्डीयान और ५०. छायापुर।

इसके पश्चात् षोढान्यास के माहात्म्य का वर्णन है । षोढान्यास को न कर जो साधक त्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम करता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है और नरक को जाता है । इस न्यास को करने वाला साक्षात् शिव हो जाता है । इस न्यास को करने वाले को चाहिये कि वह किसी भी व्यक्ति को प्रणाम न करे क्योंकि वह साधक जिस किसी व्यक्ति को प्रणाम करेगा वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा । साधक को चाहिये कि वह काम क्रोध लोभ अहङ्कार का त्याग करे । जो कुछ अन्न जल ग्रहण करे वह स्त्री के साथ । इस न्यास को दिन में तीन बार करना चाहिये । ऐसा साधक जहाँ रहता है वह क्षेत्र दिव्य हो जाता है । वह जहाँ-जहाँ जाता है त्रैलोक्य निवासी उसे अग्नि पर आरूढ देखते हैं । उसके पूर्ववर्त्ती सात जन्मों के पाप छह मास तक के अभ्यास से जल जाते हैं ।

**एकादश पटल**—इस पटल में आठ प्रकार के न्यासों के साथ प्राणायाम आदि की चर्चा है । न्यास शरीर के तत्तत् अङ्गों में सम्पन्न होते हैं । सर्वप्रथम आसन न्यास का वर्णन है जिसमें अमृतार्णवासन, पीताम्बुजासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन, साध्यासन, साध्यसिद्धासन, पर्यङ्कशक्तिपीठ एवं सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासन को बतलाया गया है । इन आसन न्यासों के मन्त्रों के उद्धार की भी चर्चा है । उसके पश्चात् वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं के न्यास का उद्धार-क्रम बतलाया गया है । इस क्रम में किन-किन अङ्गों में न्यास करना है इसका भी उल्लेख है ।

इसके बाद करन्यास एवं षडङ्गन्यास का वर्णन है । इस क्रम में मूलविद्या की दो आवृत्ति कर समस्त अङ्गुलितलों में स्वाहा वषट् वौषट् हुम् और फट् से न्यास करने के बाद हृदय शिर शिखा दोनों भुजा नेत्रत्रय और अस्त्र में नमः स्वाहा वषट् कवच और वौषट एवं फट् से न्यास करने का विधान बतलाया गया है । अन्त में यह भी कहा गया कि अङ्गन्यास से रहित पूजा होम आदि निष्फल होते हैं ।

चतुष्पीठ न्यास के सन्दर्भ में कामगिरि जालन्धर पूर्णगिरि और ओड्यान पीठों के न्यास को बतलाया गया है । उनके मन्त्रों का उद्धार बतलाने के साथ-साथ तत्तद् देवियों के नाम भी बतलाये गये हैं । कामगिरि की देवी कामेश्वरी, जालन्धर की वज्रेश्वरी, पूर्णगिरि की भगमालिनी और ओड्यान पीठ की देवी महात्रिपुरसुन्दरी है । इनके स्थान मूलाधार, हृदय, भ्रूमध्य अर्थात् आज्ञाचक्र एवं ब्रह्मरन्ध्र है ।

इसी क्रम में तत्त्वादिन्यास की चर्चा की गयी है जिसमें मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक पुनः ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक न्यास करना पड़ता है । इस न्यास के मन्त्र का उद्धार-क्रम बतलाये हुए न्यास स्थानों का भी वर्णन किया गया है । इस प्रकार न्यास करने से साधक का शरीर मन्त्रमय हो जाता है और इस प्रकार की पूजा के योग्य बन जाता है । यह सम्मोहन न्यास त्रैलोक्यमोहन की क्षमता रखता है ।

उक्त न्यास के बाद अन्तर्याग और बहिर्याग की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले किया गया प्राणायाम आवश्यक होता है । प्राणायाम के विना सब कुछ किया गया निरर्थक होता है । प्राणायाम शब्द का अर्थ है—प्राण अर्थात् जीवन-श्वास का आयाम अर्थात् विस्तार या प्रतिबन्ध । एक निश्चित क्रम में श्वास को अन्दर खींचने, रोकने और छोड़ने की क्रिया प्राणायाम कहलाता है । प्राणायाम से कुण्डलिनी का उद्‌बोधन होता है । करोड़ों सूर्य के समान तेजोमयी, सिंघाड़े की तरह त्रिकोण मूलाधार में स्थित एवं कालाग्नि की शिखा के समान दीप्तिमती कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । हुङ्कार के उच्चारण से इसका उद्‌बोधन होता है । जीव मूलाधार में और शिव सहस्रार में रहते हैं । कुण्डलिनी शक्ति के साथ जीव भी छः चक्रों का भेदन कर अन्त में सहस्रारस्थ शिव के साथ एक हो जाता है । यही मुक्ति है ।

कुण्डलिनी तीन प्रकार की है उसके बीज भी तीन हैं । प्रथम कुण्डलिनी मूलाधार से लेकर हृदय तक रहती है । इसका वाग्भव (= ऐं) बीज, जो कि पिघले हुए सोने के समान है, के रूप में ध्यान करना चाहिये । इसका नाम वह्निकुण्डलिनी है । हृदय से लेकर कण्ठ तक रहने वाली सूर्यकुण्डलिनी है । यह करोड़ों सूर्य के समान है । इसका बीज कामराज (= क्लीं) है । यह कामराजबीज भी करोड़ों सूर्य की प्रभा के समान है । तीसरी कुण्डलिनी भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक है । भ्रूमध्य में शक्तिबीज (= ह्सौः/ह्सौं) हैं । यह बीज करोड़ों चन्द्रमा के समान है इसलिये यह भी कोटि चन्द्र के समान है तथा इससे अमृत झरता रहता है । एक तुरीय कुण्डलिनी भी है जो उक्त तीनों बीजों का मिश्रण है और इसका रूप बिन्दुत्रय होता है । यह देशकाल की सीमा से रहित केवल ज्ञानात्मक होती है । इससे गिरने वाले अमृतबिन्दु से परदेवता का तर्पण अन्तर्याग कहलाता है जो जीवन्मुक्ति देने वाला होता है । यह समस्त पापों का प्रायश्चित्त है । चार सौ प्राणायामों के द्वारा इन चारों कुण्डलियों का ध्यान ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण महापापों का नाशक है ।

**द्वादश पटल**—जो लोग मानस याग नहीं कर सकते या नहीं करना चाहते उनके लिये मानस पूजा का विधान है । इससे भी वही फल प्राप्त होता है जो

मानस याग से । इस विधि में त्रिपुरसुन्दरी की षोडशोपचार से भावमयी पूजा की जाती है । वे सोलह उपचार है—१. आसन, २. पाद्य, ३. अर्घ्य, ४. आचमन, ५. मधुपर्क, ६. आचमन, ७. पर्यङ्क, पादुका, उद्वर्तन, तैलस्नान, जलस्नान ८.गात्रमार्जन एवं वस्त्रपरिधान, केशविन्यास, सूत्रावली, सिन्दूर, तिलक, रदनच्छद में अलक्तक, अञ्जन, गात्रानुलेपन, आभूषण, ९. गन्ध, १०. पुष्प, ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य, १४. ताम्बूल, १५. दक्षिणा, १६. साष्टाङ्गप्रणाम । जिस प्रकार बाहरी चक्रपूजा होती है उसी प्रकार देवी की नव आवरण शक्तियों की मानसी पूजा करनी चाहिये । गृहस्थ केवल मानस पूजा से सिद्धि नहीं प्राप्त करता । उसे बाह्यपूजा भी करनी चाहिये ।

इसके पश्चात् ध्यान-योग का वर्णन किया गया है । न्यास पूजा जप और पुरश्चरण के विना भी केवल ध्यान-योग से सिद्धि मिल सकती है । ब्रह्मा विष्णु रुद्र मनुष्य सब लोग ध्यान से सिद्धि को प्राप्त किये । ध्यान के लिये एकान्त रमणीय जनकोलाहल-रहित स्थान में आसन लगाकर साधक को गुरु मण्डली को प्रणाम करने के बाद जीव-ब्रह्म की एकता का ध्यान करना चाहिये । पृथिवी आदि समस्त तत्त्वों का विपरीत क्रम से परमात्मा में लय का ध्यान करना चाहिये । ब्रह्म और प्रकृति के संयोग से हुई वृष्टि से समस्त विश्व परिप्लावित हो रहा है—ऐसा ध्यान करना चाहिये । उस जल में अपना तथा प्रकृति का चिन्तन कर पुन: सृष्टिप्रक्रिया की भावना करनी चाहिये । भूबीज (= लं) से पृथिवी को कठिन कर प्रणव से उस पृथिवी का दो भाग कर उस ब्रह्माण्ड के अन्दर नित्य मेढ़क की भावना करनी चाहिये । मेढ़क की पीठ पर कालाग्निरुद्र रूप आधारशक्ति का मूलप्रकृति के रूप में ध्यान करना चाहिये । वह मूलप्रकृति कूर्म के आकार की है । उसके शिर पर श्वेतवाराह है जो अपने दाँतों के ऊपर शस्यश्यामला पृथिवी को धारण किये हुए हैं । इस पृथिवीध्यान के साथ कल्पवृक्ष की वाटिका का भी चिन्तन करना चाहिये । इस वाटिका में कल्पवृक्षों के अतिरिक्त चन्दन, कर्णिकार, मातुलुङ्ग, करञ्ज, द्राक्षा, अनार, आम, कटहल आदि नाना प्रकार के वृक्ष विराजमान है । सुगन्धित पुष्पों वाली लतायें भी हैं ।

उस वाटिका में रत्न-मण्डप स्थित है । वह चार सौ कोस लम्बा चौड़ा और चार द्वारों वाला है । उसमें अनेक रत्नों वाले तोरण वितान दण्ड ध्वजायें लगी हैं । लोकपाल सिद्ध चारण गन्धर्व आदि वहाँ उपस्थित होकर अपना-अपना कार्य कर रहे हैं । उस विशाल मण्डप के भीतर एक महामाणिक्य मण्डप है । उसके नीचे बालसूर्य के किरणों जैसी चौकोर वेदी है । उसके ऊपर सिंहासन है जिसके चारो पायें शरीरधारी धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य के द्वारा पकड़े गये हैं । सिंहासन के मध्य सर्वतत्त्वात्मक कमल है जिसकी कर्णिका में सूर्य, सूर्य के बीच चन्द्र और चन्द्र के बीच अग्नि का ध्यान करना चाहिये । उस सिंहासन के चारो

ओर तथा ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पञ्च प्रेत विराजमान है । प्रकटा आदि देवियों का ध्यान करने के बाद पर्यङ्क शक्तिपीठ के ऊपर त्रिपुराम्बा का ध्यान करना चाहिये जो कामेश्वर की गोद में विराजमान है । आगे चलकर इस कामेश्वरी के रूप सौन्दर्य का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है । नाना रत्नाभरण से युक्त वह इच्छाशक्तिरूपी पाश, ज्ञानशक्तिरूपी अङ्कुश और क्रियाशक्तिमय धनुष बाण ली हुई है । यह देवी सर्वदेवमयी सर्वमन्त्रमयी सर्वेश्वर्यमयी तथा साक्षात् परमानन्दरूपिणी है ।

अन्त में इस ध्यान का माहात्म्य बतलाया गया है कि ऐसा ध्यान करने वाला पृथिवी पर देवता के रूप में विचरण करता है । वह मनुष्य रूप में देवता है । उसके सारे कार्य देवता बुद्धि से सम्पन्न होते हैं इसलिये वह चतुर्वर्ग को प्राप्त कर लेता है ।

**त्रयोदश पटल**—इस पटल में बाह्य याग का वर्णन किया गया है । पूर्वपटल में वर्णित अम्बिका का ध्यान करने के बाद उसके मूलमन्त्र से अपने शिर पर पुष्प रखना चाहिये । अपने को ब्रह्म या ईश्वर के रूप में निरन्तर ध्यान करने वाला देवरूप हो जाता है । इस प्रकार के ध्यान के पश्चात् पूजार्घ्यपात्र बनाना चाहिये । इस क्रम में सारे पात्र ताम्र के होने चाहिये । शङ्ख शुक्ति रजत स्वर्ण के भी पात्र प्रयोज्य होते हैं । कौल साधकों के लिये नरकपाल का अर्घ्यपात्र विहित है । महादेवी का पात्र पन्ना माणिक्य हीरा वैदूर्य और नीलम के भी होते हैं ।

इसके पश्चात् विशेषार्घ्य बनाना चाहिये । साधक अपने और श्रीचक्र के मध्य में चौकोर मण्डल बनाये । उसके अन्दर षट्कोण उसके अन्दर वृत्त फिर उसमें त्रिकोण लिखकर उस मण्डल की पूजा करे । उस पर अर्घ्यपात्र रखकर अग्नि-मण्डलरूप उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये । फिर सूर्यमण्डल के रूप में उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये । इसी प्रकार उसे चन्द्र मण्डलरूप समझकर चन्द्रकलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये । उस पात्र में रत्नेशी, कामरूप पूर्णगिरि जालन्धर ओड्यान पीठों का पूजन कर पञ्चवक्त्र शिव तथा उनकी गोद में स्थित सुरादेवी का धेनुमुद्रा से आवाहन ध्यान कर उस सुरा का गालिनीमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये । हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वौषट् तथा सहक्षमलवरयूं सुरादेव्यै वौषट् मन्त्रों से आनन्द भैरव और सुरा को जोड़ना चाहिये । इसी प्रकार मन्त्रोच्चार के साथ सन्दीपन आदि कर बोधिनी मुद्रा से बोधन करना चाहिये । पात्रों की संख्या नव होती है जिनमें चार पात्र वटुक के तीन पात्र गुरुओं के तथा एक-एक पात्र अपने होते हैं । कुशाग्र से सुरा को लेकर सबको तृप्त करने के बाद तीन बार स्वयं प्राशन करना चाहिये । पात्र के

टूटने या सुरा के भूमि पर गिरने से अशुभ होता है। उसके निराकरण के लिये होम करना चाहिये । आचार्य को दिये जाने वाले समस्त पदार्थों का प्रोक्षण अवश्य करना चाहिये ।

**चतुर्दश पटल**—इस पटल में आधारशक्ति से लेकर कामेश्वर तक की पूजा का विधान वर्णित है । ओङ्कार बिन्दु के मध्य कामपीठ का ध्यान कर उसके ऊपर कामेश्वर का ध्यान करना चाहिये । वे एकवक्त्र चतुर्भुज भस्मोद्धूलित शरीर वाले हैं। हाथ में त्रिशूल पिनाक कमल और बीजपूर लिये हुए श्वेत कमल पर विराजमान हैं । तत्पश्चात् कामेश्वर की गोद में बैठी कामेश्वरी का ध्यान करना चाहिये । ध्यान का मन्त्र—ऐं ह्रीं सौः महात्रिपुरसुन्दर्यमृतचैतन्यमूर्त्तिं कल्पयामि । वह साधक को चतुर्वर्ग दे रही है । इसके पश्चात् नाराच मुद्रा से रक्षा करनी चाहिये । अवगुण्ठन दिग्बन्धन करने के बाद प्राणायाम कर पुष्पाञ्जलि से देवी का आवाहन करना चाहिये और बाह्य तथा आभ्यन्तर मूर्त्तियों के ऐक्य की भावना करनी चाहिये । नासिका से वायु को निकालकर पुष्पाञ्जलि पर छोड़ना चाहिये और स्थापना तक पुष्प को हाथ से अलग नहीं करना चाहिये । इसके बाद त्रिखण्डा मुद्रा से देवी को पीठपर रखना चाहिये । 'महापद्मवनान्तःस्थे.....कण्ठस्य देहि मे' श्लोकों का पाठ करना चाहिये ।

आवाहनी मुद्रा से आवाहन सन्निधापनी से स्थापन करने के बाद धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये । परमीकरण अवगुण्ठन सकलीकरण करने के बाद सम्मुख मुद्रा से देवी के सम्मुख होकर प्रार्थना करनी चाहिये । इसके अनन्तर 'ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि' से देवी के पैरों में तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये । तर्पण अभ्यर्थन के बाद पूजा के लिये प्रार्थना करनी चाहिये । इसके अनन्तर इस पटल में आसन आदि देने की विधि बतलायी गयी है कि आसन स्वागत दर्शन पाद्य अर्घ्य के अन्त में 'नमः' कहना चाहिये । आचमन मधुपर्क पुनः आचमन के अन्त में 'स्वधा' कहना चाहिये । स्नान वस्त्र आभरण के अन्त में 'नमः' गन्ध पुष्प के अन्त में वौषट्, धूप दीप नैवेद्य को 'नमः' के साथ देना चाहिये । पुष्पाञ्जलि ज्ञानमुद्रा से तर्पण तत्त्वमुद्रा से तथा सबके अन्त में योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये ।

अन्त में मूलमन्त्र का जप होम और बलि देनी चाहिये । बलिदान के बाद दशाङ्गधूप दीपमाला सिन्दूर पान (= मदिरा) रेशमीवस्त्र नेत्राञ्जन देकर दर्पण दिखाना चाहिये । शिर पर छत्र लगाकर चामर से बीजन करना चाहिये । शङ्ख घण्टा को बजाकर पुनः धूप दिखानी चाहिये । तत्पश्चात् गीत वाद्य क्रीडा कौतुक को नट नर्तक वेश्याओं के साथ सम्पादित कर सर्वात्मभाव से सबकुछ देवी के लिये समर्पित कर अपने को देवीमय होने की भावना करनी चाहिये ।

**पञ्चदश पटल**—इस पटल में देवी त्रिपुरसुन्दरी के लिये प्रयोज्य सोलह उपचारों, उनके समर्पण विधि आदि की चर्चा की गयी है । १. पहला उपचार आसन है । यह सोना चाँदी वस्त्र पुष्प काष्ठ का हो सकता है । पत्ते का आसन वर्जित है । २. दूसरा उपचार पाद्य है । चन्दन अगर से सुगन्धित शीतल जल शङ्ख या किसी तैजस पात्र में देने का विधान है । ३. श्वेत सरसो मूँग तिल दूध यव रक्तचन्दन पुष्प शङ्ख में रखकर शिर पर अर्घ्य देना चाहिये । ४. गन्धयुक्त स्वच्छ जल शङ्ख अथवा तैजस पात्र में रखकर पाद्य देने से आयु बल यश वृद्धि बढ़ती है । यह आचमन कर्पूर से वासित कालागुरु से प्रधूपित होना चाहिये । ५. मधुपर्क की रचना दही घी जल मधु गन्ने की शर्करा से की जाती है । जल नारियल का होना चाहिये । इस मधुपर्क के दान से साधक ज्योतिष्टोम और अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करता है । ६. स्नान—कपूर अगुरु कस्तूरी गोरोचन कुङ्कुम नारियल का जल, मधु, ईख का रस, पञ्चगव्य, सर्वौषधि और अन्त में जल यह त्रिपुरा का प्रिय स्नानीय द्रव्य है । प्रत्येक वस्तु के एक हजार पल से महास्नान होता है । सौ पल से मध्य स्नान होता है । दश पल से लघु स्नान होता है । सबको मिलाकर स्नान करने का परिमाण नहीं है । पहले त्रिपादूर्ध्व.. ......मन्त्र फिर मूलमन्त्र के बाद 'त्वमापः......से स्नान करना चाहिये । ७. वस्त्र—वस्त्र का अर्पण न करने वाला याजक पाप के समुद्र में गिरता है । यदि किसी परिस्थिति वश वस्त्र उपलब्ध न हो तो रक्त कमल या जवा कुसुम अर्पित करना चाहिये । मलिन, पुराना, पहना हुआ, अग्निदग्ध आदि वस्त्र देवी को नहीं चढ़ाना चाहिये । रंगविरंगे रेशमी वस्त्र से देवी प्रसन्न होती है । वस्त्रार्पण के समय 'विद्यातन्तु............परिधत्स्व सुरेश्वरि' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । ८. अलङ्करण—किरीट शिरोरत्न आदि सोलह अलङ्कारों का अर्पण देवी को सन्तुष्ट और पुष्ट करता है । अलङ्कार अर्पण के समय 'नवरत्नसमायुक्ता........ निवेदितम्' मन्त्र को पढ़ना चाहिये । ९. गन्ध—यह पाँच प्रकार का होता है । गन्ध के अनेक प्रकार हैं । पाँच प्रकार तो सङ्केत मात्र है । सभी गन्धों में मलयज गन्ध उत्कृष्टतम माना गया है । गन्ध अर्पण के समय 'शरीरं ते न जानामि..........विलिप्यताम्' मन्त्र का पढ़ना चाहिये । गन्ध से सुसन्तोषित देवी चतुर्वर्ग फल प्रदान करती है । अञ्जन—स्वर्ण के पात्र में घी तेल से बना हुआ कर्पूरमिश्रित अञ्जन देवी को प्रिय होता है । यह अञ्जन विधवा स्त्री को नहीं बनाना चाहिए । मिट्टी के पात्र में बने हुए अञ्जन के अर्पण से अर्चक को पूजा का फल नहीं मिलता । पुष्पपत्र—दूसरे का, सूँघा गया, चोरी से लाया गया, बासी पत्र पुष्प देवी के लिये वर्जित है । श्वेत रक्त कमल कुमुद पाँच दिनों तक बासी नहीं होते । बिल्व पत्र तीन दिनों तक पर्युषित नहीं होता । दूर्वाङ्कुर मदन एवं बिल्व के अतिरिक्त अन्य पत्र देवी के लिये निषिद्ध है । स्वर्ण आदि से निर्मित पुष्प सर्वोत्तम होता है । पत्र पुष्प फल जिस रूप में विकसित होते हैं

उसी रूप में चढ़ाना चाहिये उल्टा नहीं । पुष्प अर्पण का मन्त्र है—'ब्रह्म विष्णु. .........प्रतिगृह्यताम् ।' ११. धूप—पत्र मुस्ता आदि सोलह वस्तुओं से बनी धूप षोडशी को प्रसन्न करती है । मन्त्र—'वनस्पतिरसो........प्रतिगृह्यताम् ।' १२. दीप—घी का दीपक सर्वोत्तम होता है । सोना चाँदी का दीपपात्र उत्तम होता है । दीपक को दीवट पर रखना चाहिये भूमि पर नहीं । दीपमाला—त्रिपुरभैरवी के लिये दीपमाला देनी चाहिये । यह तीन या पाँच दीपों की होती है । दीप में घी तेल का मिश्रण नहीं करना चाहिये । दीप का मन्त्र—'सूर्याचन्द्र................. प्रतिगृह्यताम् ।' दीप को देवी के दाँयें रखना चाहिये । गन्ध पुष्प भूषण को बायें रखना चाहिये । १३. नैवेद्य—भोजन आदि नैवेद्य को देवी के सामने रखना चाहिये । मद्य को पीछे और अन्य पेय वस्तु को बाँयें रखना चाहिये ।

**षोडश पटल**—मद्य—मद्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि ईख के रस को दो दिन तक रखने के बाद उसमें आम का रस, मधु, बेर, जामुन, खजूर, नारियल और अङ्गूर के रस मिलायें । इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुओं के चूर्ण को स्वर्ण या चाँदी या शीशे के बर्तन में रखकर उसमें चीनी डाल दे । लाल वस्त्र से ढँक दे। चन्दन अगुरु धूप से धूपित करने पर यह देवी का प्रिय मद्य होता है । ब्राह्मण को मद्य का अर्पण नहीं करना चाहिये । यदि वह ऐसा करता है तो उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है । किन्तु यदि ब्राह्मण निर्विकल्प हो जाय तो वह देवी के लिए मद्य-अर्पण का अधिकारी हो जाता है । ऐसा करने पर वह अष्टसिद्धिभाक् हो जाता है । मद्य अर्पण का मन्त्र है—'सुरे चानघ............... विस्फुरणं कुरु ।'

**नैवेद्य**—नैवेद्य चर्व्य चोष्य लेह्य और पेय भेद से चार प्रकार का होता है । नैवेद्य सर्वयज्ञमय तथा धर्मार्थकाममोक्षप्रद होता है । यह नैवेद्य पात्रता के अनुसार सामिष निरामिष दानों प्रकार का हो सकता है । जो मृग एवं पक्षी बलि के लिये विहित हैं उनके मांस का भोग लगाना चाहिये । निरामिष नैवेद्य की सीमा में सुसंस्कृत, घृत शर्करा दुग्ध से युक्त सुगन्धित, तण्डुल वाला पायस, शाक, हिंगु जीरा आदि मिश्रित आदि अनेक प्रकार के पदार्थ आते हैं । अशुद्ध अपक्व नैवेद्य निषिद्ध है । यह नैवेद्य रजत सुवर्ण ताम्र या पत्थर के पात्र में देना चाहिये । अभाव में कमल के पत्ते पर दिया जा सकता है । नैवेद्य को ढँककर देवी के सामने रखना चाहिये । फिर ढक्कन खोलकर वायु बीज (= यं) से संशोषण अग्नि बीज (= रं) से दहन और वरुण बीज (= वं) से सुधा के द्वारा उस नैवेद्य को धेनुमुद्रा दिखाकर आप्लुत करने के बाद अस्त्रमन्त्र से संरक्षण मूल मन्त्र से अभिषेक करना चाहिये । मन्त्र—मूलदेवी का नाम लेकर 'नैवेद्यं गृहाण स्वाहा' कहना चाहिये । इसके अतिरिक्त 'अन्नं चतुर्विधं...............भुज्यताम्' का भी पाठ करना चाहिये ।

आचमन—जावित्री लवङ्ग कङ्कोल से सुगन्धित जल से आचमन देना चाहिये। मन्त्र—'जातीलवङ्ग.....सुन्दरि। १४. ताम्बूल—कपूर आदि से सुवासित पान का बीड़ा देवी को देना चाहिये। नमस्कार—अनेक स्तोत्रों से देवी की स्तुति करते हुए प्रणाम करना चाहिये। नमस्कार से देवता मनुष्य आदि सब के सब प्रसन्न होते हैं। अत: नमस्कार महाफलदायी है। नमस्कार तीन प्रकार का होता है—१. कायिक, २. वाचिक और ३. मानसिक। पुन: वह अन्य रूप में तीन प्रकार का होता है। १. उत्तम, २. मध्यम और ३. अधम। घुठनों से बैठकर शिर को धरती से लगाना कायिक नमस्कार है। दोनों हाथ जोड़कर धरती का स्पर्श न करना अधम नमस्कार है। घुठनों से धरती को न छू कर केवल शिर से प्रणाम मध्यम कोटि का नमस्कार है। १५. प्रदक्षिणा—दाँयाँ हाथ फैलाकर नम्रशिरा होकर भक्तिश्रद्धा से पूरित देवता को दाँयी ओर रखते हुए गोलाकार में घूमना प्रदक्षिणा है। १६. साष्टाङ्ग प्रणाम—यह सात प्रकार का होता है—१. त्रिकोण, २. षट्कोण, ३. अर्धचन्द्र, ४. प्रदक्षिणा, ५. दण्डवत्, ६. अष्टाङ्ग और ७. उग्र। १. दक्षिण दिशा से वायुकोण तक, वहाँ से ईशान कोण, वहाँ से फिर दक्षिण को जाना त्रिकोण प्रणाम है। २. दक्षिण से वायु कोण वायु से ईशान वहाँ से दक्षिण वहाँ से अग्निकोण, फिर वहाँ से नैर्ऋत्य कोण फिर उत्तर दिशा वहाँ से अग्निकोण और वहाँ से दक्षिण, यह अर्धचन्द्र प्रणाम है। ४. प्रदक्षिणा करते हुये प्रणाम करना प्रदक्षिणा प्रणाम है। ५. अपना आसन छोड़कर देवता के पास जाकर दण्ड के समान भूमि पर लेटना दण्डवत् प्रणाम है। ६. ठोड़ी मुख नासिका हनु नेत्र कर्ण ब्रह्मरन्ध्र से प्रणाम करना अष्टाङ्ग प्रणाम है। ७. जिसमें केवल ब्रह्मरन्ध्र से क्षिति का स्पर्श करते हुए नमस्कार किया जाय वह उग्र प्रणाम कहलाता है। स्वरचित गद्य पद्य से नमस्कार उत्तम, पौराणिक तान्त्रिक मन्त्रों से नमस्कार मध्यम होता है। पर रचित से अधम होता है। मानसिक प्रणाम भी उत्तम मध्यम अधम भेद से तीन प्रकार का होता है।

**सप्तदश पटल**—इस पटल का विषय प्रकटा आदि देवियों की पूजा विधि तथा मुद्रा का वर्णन है। इन देवियों की पूजा सृष्टि स्थिति संहार क्रम से की जाती है। मोहन और क्षोभण चक्रों की पूजा वामावर्त्त के क्रम से तथा शेष चक्रों की पूजा दक्षिणावर्त्त क्रम से की जाती है। नवचक्रों वाले श्रीचक्र की पूजा के पहले आवरण-शक्तियों की पूजा की जाती है। ये शक्तियाँ नौ हैं। प्रथम आवरण महायोगीश्वर बुद्ध हैं। इनकी पूजा 'बुं बुद्धाय नम:' मन्त्र से की जाती है। इसके बाद पश्चिम आदि चार दिशाओं में अणिमा आदि चार एवं वायव्य आदि कोणों में वशित्व आदि अधोभाग में प्राप्ति और ऊर्ध्वभाग में यत्रकामावसायित्व की पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजा का मन्त्र—ह्रीं श्रीं श्रीपादुकां पूजयामि है। दूसरी

पंक्ति में ब्राह्मी आदि माताओं तथा असिताङ्ग आदि आठ भैरवों की एक साथ पूजा होती है। तीसरी पंक्ति में सर्वसंक्षोभिणी के साथ चारों दिशाओं में करशुद्धि-करी संक्षोभकारिणी आदि की अर्चना की जाती है। इनका अर्चन त्रैलोक्यमोहन चक्र में होता है जो कि त्रिपुरसुन्दरी के द्वारा अधिष्ठित है। सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा का बीज 'द्रां' है।

दूसरे भाग में सोलह नित्याओं की पूजा की जाती है। इस पूजा के माध्यम ब्रह्मा हैं। इनके बाँयें सावित्री दाँयें सरस्वती सामने वेद तथा देवगण रहते हैं। इनका मन्त्र है—ॐ ब्रह्मणे नमः। यहाँ चक्रेश्वरी की पूजा 'ऐं क्लीं सौः' से की जाती है। इन नित्याओं का बीज 'द्रीं' है। तीसरे स्तर पर पञ्चवक्त्र उमामहेश्वर का ध्यान पूजन किया जाता है। सर्वसंक्षोभण चक्र में इनकी इनके आवरण के साथ पूजा की जाती है। मन्त्र—क्लीं शिवाय नमः, ह्रीं उमायै नमः। मुद्रा का बीज—'द्रूं' है। उमा महेश्वर की पूजा के बाद कवर्ग से अनङ्गकुसुमा की पूजा की जाती है। 'चवर्ग' से अनङ्गमेखला, टवर्ग से अनङ्गमदना, तवर्ग के द्वारा अनङ्गमदनातुरा की पूजा करने का विधान है। इसी प्रकार पवर्ग से अनङ्गरेखा, यवर्ग से अनङ्गवेगिनी, शवर्ग से अनङ्गाङ्कुशा तथा ळ क्ष से अनङ्गमालिनी की पूजा कर त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करनी चाहिये। कामबीज से आकर्षिणी मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये।

सर्वसौभाग्यप्रद चक्र में सूर्य की पूजा होती है। उनके परिवारों की पूजा चक्रनायिका त्रिपुरा की पूजा के समान करने का विधान है। यहाँ 'ब्लूं' बीज तथा सर्ववश्यकरी मुद्रा का प्रयोग होता है। सर्वार्थसाधक चक्र के बाह्य दशार में विष्णु का ध्यान करने की विधि है। यहाँ पूजा का मन्त्र है—'क्लीं हृषीकेशाय नमः'। बीज 'सः' और मुद्रा उन्मादिनी का प्रयोग करना चाहिये। षष्ठ सर्वरक्षाकर चक्र के अन्तर्दशार में त्रैलोक्यमोहन विष्णु का ध्यान और पूजा होती है। विष्णु के स्वरूप का वर्णन कर उनके वाम पार्श्व में शोभमान शक्ति की भी पूजा साथ-साथ विहित है। यहाँ 'क्लीं' बीज तथा महाङ्कुशा मुद्रा का प्रयोग करने का विधान है। महाङ्कुशा मुद्रा का बीज 'क्रों' है। सप्तम चक्र जो कि अष्टकोणात्मक होता है, में आवरण देवता के रूप में वशिनी आदि रहस्य योगिनियों का पूजन करना चाहिये। चक्रनायिका के बाँयें दाँयें मुक्तिसिद्धि यजन करना चाहिये। बीज 'सः' और मुद्रा खेचरी है।

मध्य त्रिकोण अर्थात् सर्वसिद्धिप्रद चक्र में कामेश्वरी वज्रेश्वरी और भगमालिनी की पूजा होती है। यहाँ विष्णु ब्रह्मा की संयुक्त रूप से अर्चना होती है। बीज 'ह्सौः' तथा मुद्रा बीजमुद्रा है। सर्वानन्दमय नामक नवम चक्र में ब्रह्मविष्णु शिव रूपिणी त्रिपुरभैरवी की पूजा की जाती है। इनके बाँयें इच्छा ज्ञान क्रिया और

मोक्षसिद्धि रहती है । सामने सिंह रहता है । जो कि देवी के मुख को देखता रहता है । पहले 'ऐं' बीज कहकर योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । निष्कर्ष यह है कि त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरेश्वरी, त्रिपुरभैरवी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुरश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसिद्धा, त्रिपुराम्बा आदि नामों से ज्ञेय पराम्बा ब्रह्मस्वरूपिणी का सभी चक्रों में प्रधान देवता के रूप में पूजन होता है । आवरण देवता के रूप में अनेक देव देवियाँ सिद्धियाँ बीज तथा मुद्रायें भी अर्चनीय प्रदर्शनीय होती हैं । सबका पूजन तर्पण करने के साथ-साथ पुष्पाञ्जलि से अन्तिम अभ्यर्चन करना चाहिये ।

**अष्टादश पटल**—अठारहवें पटल का विषय जप होम भक्ति एवं मुद्रा है । जप के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि समस्त यज्ञों में जप यज्ञ अत्यन्त प्रशस्य है क्योंकि जप से देवता सन्तुष्ट होते हैं और सिद्धि मिलती है । अक्षरों का बार-बार अव्यवहित उच्चारण या मन में अव्यवहित स्मरण जप कहलाता है । जप-रूप शक्ति और ध्यानरूप शिव का एक साथ संयोग होने से सिद्धि मिलती है । माला से जप करने का विधान है । सभी प्रकार की मालाओं में वर्णमयी माला सर्वोत्तम होती है । पचास वर्णों के अनुलोम विलोम तथा आठ वर्गों के आठ वर्णों को मिलाकर एक सौ आठ वर्णों की माला बनती है । रुद्राक्ष आदि से निर्मित माला के अभाव में करमाला का प्रयोग करना चाहिये । अनामिका के मध्य से तर्जनी के मूल तक दश अङ्क होते हैं । इन पर जप करना चाहिये । अङ्गुलियाँ सटी होनी चाहिये । छिद्र रहने पर जप अङ्गुलियों से नीचे सरक जाता है । माला की पूजा करने के बाद दाँयें हाथ से माला उठानी चाहिये और 'ऐं माले.......' मन्त्र पढ़कर दाँयें हाथ से माला उठानी चाहिये ।

जप के समय हाथ से माला गिर जाने से विघ्न तथा टूट जाने से मृत्यु होती है । अक्षमाला को जोर से हिलाना या किसी दूसरे को दिखाना नहीं चाहिये । माला को हृदय से लगाकर जपना चाहिये । तर्जनी से माला का स्पर्श नहीं करना चाहिये । बाँयीं जाँघ पर दाँयें पैर को रखकर गुरु देवता एवं मन्त्रों के ऐक्य की मन में भावना करते हुए जप करना चाहिये । जप के वाचिक उपांशु और मानस तीन भेद है । किसी मन्त्र का दश हजार जप उत्तम, एक हजार मध्यम और एक सौ आठ बार जप अधम कोटि का होता है । एक वस्त्र पहन कर या दो से अधिक वस्त्र पहन कर चिन्तायुक्त क्रुद्ध, रुग्ण, क्षुधार्त्त, बोलकर, सोते हुए, चलते हुए, खाते हुए जप नहीं करना चाहिये । मन्त्र जप को देवी के बाँयें हाथ में अर्पित कर देना चाहिये । जप के आदि और अन्त में ओङ्कार रूप सेतु लगाना चाहिये ।

जप करने के बाद संस्कारयुक्त अग्नि में जप का दशांश हवन करना

चाहिये। षडङ्ग से छह आहुतियाँ देने का विधान है । नित्य होम से रहित साधक त्रिविध दु:ख प्राप्त करता है । त्रिपुरभैरवी स्वयं अग्निमयी है । इसलिये होम न करने वाले जापक का वह धन आदि नष्ट कर देती है । पक्षमास वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होम करना चाहिये यदि किसी कारणवश होम न करने की स्थिति हो तो होम की संख्या का दो गुना अधिक जप करना चाहिये ।

होम के बाद स्तुति प्रदक्षिणा प्रणाम करने के बाद भक्तिपूर्वक नैवेद्य को भोग लगाना चाहिये । तत्पश्चात् अनुलेपन, सिन्दूर, नेत्राञ्जन, धूप, दीप, दर्पण, व्यञ्जन, छत्र, चामर, घण्टानाद, वाद्य, गीत, नृत्य एवं क्रीडा का प्रयोग करना चाहिये । पीली सरसों और दीपावलि से निर्मञ्छन कर देवी के शिर पर दूर्वा और अक्षत रखनी चाहिये । अन्त में भक्तिभाव के साथ दास्य एवं आत्मनिवेदन करने का विधान है । ऐसा करने वाला अर्चक सर्वसम्मान्य हो जाता है । आगे चलकर देवी के लिये तत्तद् वस्तु के समर्पण का फल बतलाया गया है ।

देवी के प्रति भक्ति का फल यह है कि वह भक्त सब पापों से रहित पितृमातृ कुल के साथ चिरकाल तक स्वर्ग मे रहता है । प्रारब्ध वश इस लोक में जन्म लेकर वह सार्वभौम नृपति होकर अन्त में कैवल्य पद प्राप्त करता है । आत्मनिवेदन के बाद तर्पण देकर पुन: नवमुद्राओं का देवी के समक्ष प्रदर्शन करना चाहिये ।

अन्त में देवी के सान्निध्य के हेतु बतलाये गये हैं । वे हैं—एकान्तसेवन, आत्मशुद्धि, निर्दोषता, पूजा सामग्री की अधिकता, पवित्रता, सुगन्धयुक्त पदार्थ, अपनी सुन्दर वेषभूषा, काकुवचन, पूजाविधि की निपुणता, एकचित्तता, स्तुति, प्रणाम, जप, बलि इत्यादि ।

**उन्नीसवाँ पटल**—इस पटल में वटुक योगिनी आदि के मन्त्र बलिदान इत्यादि का वर्णन है । ये वटुक आदि यदि बलि आदि के द्वारा तृप्त नहीं किये जाते तो यज्ञकार्य में विघ्न उपस्थापित करते हैं । इसलिये इन्हें मांस आदि की बलि देकर तृप्त करना चाहिये । श्रीचक्र की चारो विदिशाओं में वटुक योगिनी क्षेत्रपाल और गणपति की पूजा करने की विधि है । वटुक का ध्यान—कमलाक्ष, स्वर्णगौर, चतुर्भुज, हाथों में शङ्ख चक्र गदा पद्म धारण किये हुए विष्णुरूप में करना चाहिये । वटुक की पूजा का मन्त्र है—क्लौं वटुकाय नम: । बलिदान का मन्त्र भी इस प्रकार है—एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभार भास्वरत्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहित बलिं गृह्ण स्वाहा । ऐसा करने वाला भाग्यहीन अर्चक भी सर्वसम्पत्-समन्वित होकर निर्विघ्न जीवन यापन करता है ।

त्रिपुरा देवी के बाँयें ओर मण्डल में योगिनी का ध्यान और बलिदान करना चाहिये । योगिनियाँ कामरूपी, तप्तकाञ्चन के समान देदीप्यमान, मदमत्त, कङ्काल की माला धारण की हुई, पृथुकटिवाली, गिरते हुए रक्त की गन्ध से पूरित, रक्तवस्त्र धारण की हुई, हाथों में लिङ्ग पाश कपाल और सृणि ली हुई हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये । इसके लिये बाँयें अङ्गूठे एवं अनामिका से बलि देनी चाहिये । मन्त्र है—यां योगिनीभ्य: सर्ववर्णयोगिनीभ्य: हुं फट् स्वाहा । इसके पश्चात् 'ऊर्ध्व.............वीरेन्द्रवन्द्या:' श्लोक के द्वारा इनकी प्रार्थना करनी चाहिये ।

देवी के वामभाग में क्षेत्रपाल का ध्यान करने का विधान है । इनका ध्यान इस रूप में करणीय है—ये अपराजिता की लता से वेष्टित हैं । तिन्तिडी कल्पवृक्ष की छाया के नीचे रत्नभूषित रक्तकुसुमाच्छादित भूमि पर विराजमान हैं । नीलाञ्जन के समान शरीर वाले ये हाथों में कृपाण कपाल शूल और डमरु लिये हुए हैं । दाँतों से अधर को दबाये हुए हैं । इनके बलिदान का मन्त्र है—क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्ष: क्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

देवी के सामने दाँयीं ओर गणेश का ध्यान करने की विधि है । ये नवीन बादल के समान श्याम, सर्वाभरणभूषित, तोंद वाले, हाथी के मुखवाले, चतुर्भुज और नग्न हैं । वाम दक्ष ऊर्ध्व हाथों में पाश तथा अङ्कुश, नीचे के दाँयें हाथ में मद्यपूर्ण कपाल तथा बायें हाथ से सिन्दूर सदृश आकार वाली ऋद्धि के भग का स्पर्श किये हुए हैं और ऋद्धि उनके लिङ्ग को पकड़ी हुई है । उनका मन्त्र है—गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं में वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा । इनको गजतुण्डा मुद्रा दिखाकर बलि देनी चाहिये । इसके बाद सर्वभूत बलि देने की बात कही गयी है ।

देवता मनुष्य पितृगण यक्ष राक्षस पिशाच इनको भूत कहा गया है । बलि से तर्पित ये सब यक्ष के सहायक हो जाते हैं । तर्पित न होने पर यज्ञ में विघ्न उपस्थापित करते हैं । बलिदान के पश्चात् स्वयं तथा अपने द्वारा की गयी समस्त क्रियाओं को देवी के लिये समर्पित करना चाहिये । समर्पण के पश्चात् 'आवाहनं ..................त्वदाज्ञया' मन्त्रों से देवी को प्रसन्न करना चाहिये । इसके बाद समस्त देवतायें त्रिपुरा के शरीर में विलीन हो गयीं ऐसी भावना करनी चाहिये । फिर अपने को कामकलारूप वाला समझते हुए परमेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी को अपने हृदय में विसर्जित करना चाहिये अर्थात् हृदय में स्थापित कर लेना चाहिये । निर्माल्य को भूमि पर फेंककर शिव के साथ स्वयं के ऐक्य की भावना करते हुए शेषिका देवी की निर्माल्य से पूजा करनी चाहिये ।

**बीसवाँ पटल**—शेषिका देवी का दूसरा नाम उच्छिष्टमातङ्गी है । इस पटल में उच्छिष्टमातङ्गी की पूजा का वर्णन है । इस देवी का ज्ञान होने पर आपत्तियाँ

नष्ट हो जाती है । इसके मन्त्र का जप करने से स्थावर जङ्गम कृत्रिम अङ्ग अङ्गज विषों का शमन होता है । यह विद्या स्वर्ग और मोक्ष देने वाली है । इस विद्या का जप जूठे मुख किया जाता है । वह जप ही मुखशुद्धि का आचमन है । इसके बाद उच्छिष्टमातङ्गी मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है । मन्त्र है— १. उच्छिष्टचाण्डालिनी सुमुखि देवि महापिशाचिनि हीं ठः ठः । २. ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा । इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—यह शव पर बैठी हुई, रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्त वर्ण के आभूषण पहनी हुई, यौवनसम्पन्न, पीन उन्मत पयोधरों वाली, हाथ में कपाल तथा कैंची ली हुई है । इसके मन्त्र का जप जूठे मुँह करने का विधान है । जप के बाद होम और होम के बाद बलि देनी चाहिये । हवनीय द्रव्यों में बिल्ली का मांस, मधुमिश्रित अजा मांस, से क्रमशः शस्त्र, शास्त्र, वशीकरण तथा यथेच्छ फल की प्राप्ति होती है । विद्याकामी मधु और घी से होम करे । घी, मधु, चाण्डाल के बाल को मार्जार मांस में मिलाकर हवन करने से आकर्षण होता है । खरगोश के मांस को मधु के साथ हवन करने पर विद्या धन और सुन्दर स्त्री मिलती है । इसी प्रकार विविध होम के द्वारा विविध लक्ष्य के प्राप्ति का वर्णन इस पटल में किया गया है । भिन्न-भिन्न उद्देश्य की पूर्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के उपाय बतलाये गये हैं । उदाहरण के लिये पुष्यनक्षत्र में अपामार्ग की जड़ का शरीर में लेप करने से शरीर के ऊपर किया गया प्रहार व्यर्थ हो जाता है । इसी प्रकार अनेक उपचारों के द्वारा अनेक विषयों की उपलब्धि होती है ।

**इक्कीसवाँ पटल**—पूजा के क्रम में मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए शङ्खस्थ जल को शिर से लगाना चाहिये । उसकी एक भी बूँद भूमि पर गिरने पर ब्रह्महत्या का दोष लगता है । देवी के चरणोदक का पान करना चाहिये एवं सम्पूर्ण शरीर में उसका लेप करना चाहिये । पूजा सामग्री को माया बीज से देखते हुए जहाँ-जहाँ पात्र रखा गया है उस-उस स्थान से पात्र को हटाकर जल छिड़कना तथा झाडू लगाना चाहिये । अच्छिद्र प्रार्थना के बाद सूर्य को प्रणाम करना चाहिये । नैवेद्य आदि समस्त पदार्थों को गुरु एवं गुरु शक्ति को दे देना चाहिये । देवता को भोग लगाने के बाद वह नैवेद्य अमृत हो जाता है । उसे अमृत समझकर खाने वाला देवगामी हो जाता है । तीन तत्त्व से तीन बार आचमन कर षडङ्गन्यास करना चाहिये । सर्वत्र दाता भोक्ता आदि के रूप में शिव को तथा अलंकृत स्त्रियों को देवता समझना चाहिये । इस प्रकार देवी त्रिपुरसुन्दरी की आराधना कर उसकी भावना से युक्त होकर पृथिवी पर स्वच्छन्द विचरण करना चाहिए ।

आगे चलकर परतत्त्व के ज्ञान की विधि आदि की चर्चा के क्रम में कहा गया है कि शिवस्वरूप परब्रह्म अनुत्तर है । यह स्वप्रकाश है । वेदोक्त रीति से

इस तत्त्व का बार-बार दर्शनाभ्यास करना चाहिये । परतत्त्व का ज्ञान हो जाने पर कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती । परतत्त्व का ज्ञाता आस्तिक कहा जाता है और वह मुक्त होता है । यन्त्र को देवी का शरीर कहा गया है (अथवा अपने शरीर को देवी का यन्त्र कहा गया है) इसमें अहंभाव से स्थित होकर भक्तिपूर्वक यजन करना चाहिये । देवी की कृपा से विज्ञानवान् होने के पश्चात् 'मैं पूर्ण हो गया हूँ' इस भावना से सम्पन्न होकर पृथिवी तल पर उसकी इच्छानुसार विहरण करना चाहिये ।

आगे चलकर पर तत्त्वज्ञान की विधि और उसके माहात्म्य का वर्णन किया गया । इस क्रम में कहा गया है कि जब तक चिन्मय आत्मतत्त्व में मन का लय न हो जाय तब तक इष्ट मन्त्र का जप तथा होम करना चाहिये । जब परमतत्त्व का ज्ञान हो जाय तक समस्त नियमों का त्याग कर देना चाहिए । साथ ही जिस मन से त्याग किया जाता है उस मन का भी त्याग करना चाहिये । उभयत्यागी ही वास्तविक संन्यासी होता है । पराम्बा को अपने से अभिन्न समझते हुए जो साधक उसकी पूजा करता है उसके पञ्चतत्त्वात्मक शरीर में ही वह प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है । उस का अनुमान भी अपने अन्दर ही होता है बाहर नहीं ।

अन्त में यह बतलाया गया है कि देवतागण वस्तुओं की गन्ध तथा सुन्दर रूप से ही सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होते हैं । भूत प्रेत मनुष्य और अन्य जीव जन्तु वस्तुओं के उपयोग से तुष्ट होते हैं । देवता लोग वस्तुओं का उपभोग गुरु, कुमारी, ब्राह्मण तथा गौ के शरीर के माध्यम से करते हैं इसलिये उनको भोजन कराने से ही यज्ञ पूर्ण होता है ।

**बाईसवाँ पटल**—इस पटल का विषय समयाचार है । प्रारम्भ में बतलाया गया कि हृदयस्थ परमात्मा का अनुभव होने पर ही सिद्धि मिलती है । परमात्मा को हृदय में स्थापित कर अमृत से उनकी पूजा करनी चाहिये । ब्रह्मा विष्णु और शिव से अपने तादात्म्य का अनुभव करना ही अन्तिम प्राप्य होता है । इसके लिये नित्य नैमित्तिक एवं काम्य इन तीन प्रकार के कर्मों को करना चाहिये । इन कर्मों को करने से मनुष्य की तीनों तृष्णायें (= वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा) शान्त हो जाती हैं और साधक तृप्त होकर समस्त क्रियायें त्रिपुरा की प्रसन्नता के लिये करने लगता है । माता-पिता को शिव और शक्ति समझकर उनकी भी सेवा करनी चाहिये । गुरु की सेवा भी अनिवार्य है भाईबन्धु पितृगण को भी दान एवं कर्म से प्रसन्न रखना चाहिये । इनका बलि के द्वारा तर्पण करना चाहिये । विना इन सबकी अर्चना के माता त्रिपुरसुन्दरी पूजा स्वीकार नहीं करती एवं योगक्षेम भी नहीं होता ।

राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की विधिवत् पुत्र के समान रक्षा एवं लालन-पालन करे । दण्डनीय को दण्ड शास्त्र के अनुसार देना चाहिये । शास्त्रवर्णित कर्म के अनुष्ठान से साधक के समक्ष अणिमादि विभूतियाँ प्रकट होती हैं । ऐसा होने पर उन विभूतियों को देवी को समर्पित कर देना चाहिये । केवल परब्रह्मरूपा त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये । आगे चलकर योगी की चतुष्कालिक उपासना का वर्णन किया गया है कि साधक प्रातः मध्याह्न सायं एवं मध्यरात्रि में किस प्रकार देवी की उपासना करे । सूर्यचन्द्र शिवशक्ति है, दिवारात्रि शिवशक्ति हैं, पिता माता शिवशक्ति हैं । इनको एककर ध्यान करना ही इनकी चतुर्विध उपासना है । पञ्चवक्त्र शिव की गोद में हंसती हुई देवी की स्थिति एवं तद्रूपता का ध्यान ही मङ्गलकारी होता है । देवी की पूजा शुक्लद्रव्यों एवं शुक्लवेषों से करनी चाहिये । चोष्य लेह्य पेय चर्व्य भक्ष्य पदार्थों का भोग लगाना चाहिये ।

इसके पश्चात् प्रातः तथा मध्याह्न कालिक, सायं एवं अर्धरात्रिकालिक यजनों का वर्णन विहित है । प्रातःकाल शुक्ल उपचारों एवं सायङ्काल में रक्त उपचारों से पूजा करनी चाहिये । जब देवी शिव को नीचे कर विपरीत रति में रहती है तब विश्व की रात्रिकालीन अवस्था होती है । उस समय की पूजा महाफला होती है । इसके आगे पूजा में विहित एवं निषिद्ध कर्मों की चर्चा की गयी है । ध्यान पूजा जप होम न्यास तर्पण ये सब परम मङ्गलकारी है । सन्ध्या काल में केवल एक बूँद जल तथा गुरु को प्रणाम महाफलदायक होता है । काम क्रोध आदि समस्त दुर्गुणों का त्याग कर नित्य पुरश्चरण करने वाले उपासक के अन्दर देवी का आवेश हो जाता है । देवता लोग भी उसका सहवास चाहते हैं ।

तीन याम देवी का निद्राकाल होता है । इसमें साधक निद्रा के द्वारा उसकी उपासना करे । देवी के प्रबोध काल में जो निद्रा करता है उसकी आयु विद्या यश और बल नष्ट हो जाते हैं । जो साधक चार तीन या दो सन्ध्याओं में योगयुक्त होकर ब्रह्मचर्य के साथ देवी-मन्त्र का एक वर्ष तक जप करता है वह समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । ईश्वर ने अन्त में कहा कि मैं भी व्रत-पूर्वक इस मन्त्र का जप करता रहता हूँ । यह परमरहस्य और पर-अप्रकाश्य है ।

**तेईसवाँ पटल**—इस पटल में कुमारी-पूजन का वर्णन है । किसी भी अनुष्ठान में किया गया होम आदि तभी पूर्णता को प्राप्त होता है जब अन्त में कुमारी पूजन कर दिया जाता है । ब्रह्मा विष्णु रुद्र से लेकर सारे स्थावर जङ्गम जीव जन्तु कुमारी पूजा से तृप्त होते हैं ।

यदि अनेक कुमारियाँ उपलब्ध न हो तो एक ही कुमारी की पूजा से पूर्णफल मिलता है किन्तु वह कुमारी पाँच से आठवर्ष के मध्य की तथा प्रमदा

युवति सुन्दरी होनी चाहिये । कुमारी के लिये जो अन्न जल दिया जाता है वह अक्षय्य होता है । कुमारी की पूजा कुमारीमन्त्र से करने का विधान है । पूजित होने के पश्चात् प्रसन्न होकर कुमारी जो-जो कहती हैं वह सब सत्य हो जाता है । इस पूजाक्रम मे कुमारी की जाति का विचार नहीं करना चाहिये । वह ब्राह्मणी या नापिता वेश्या कोई भी, हो पूजनीय होती है ।

पूजा के क्रम में आसन स्वागत पाद्य अर्घ्य आचमन आदि का देववत् अर्पण होता है । पूजन के समय कुमारी की स्तुति करने का विधान है । इसमें विघ्न को दूर करने और मन्त्रसिद्धि प्रदान करने की बात बार-बार कही जाती है। भोजनोत्तर आचमन ताम्बूल आदि देने का विधान है ।

जो कुमारी स्वयं ऋतुमती हो उसके आद्य रज को लेकर उसमें गोरोचन, कर्पूर, केसर, कस्तूरी और अगुरु मिलाकर उससे देवी की पूजा करनी चाहिये । देवी का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये मांस, मद्य, मुद्रा, शक्ति और आद्यरज ही साधन है।

**चौबीसवाँ पटल**—उक्त विधि के अनुसार जो कुमारी पूजा करता है उसके माता पिता धन्य होते हैं । वह अग्नि, बृहस्पति आदि के समान अतुल्य, अद्भुत दैवी शक्ति से सम्पन्न हो जाता है । उसके शरीर में सारे तीर्थ निवास करते हैं । यदि त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में एक दिन का भी व्यवधान हो जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये । कई दिनों का व्यवधान होने पर पूजक योगिनी के शाप का पात्र होता है और उसके आर्युविद्या यश और बल नष्ट हो जाते हैं तथा इष्टसिद्धि नहीं होती ।

देवी का अर्चक जन्मान्तर में चक्रवर्त्ती राजा होता है तथा इस जन्म में देवी का परम भक्त होकर कैवल्य प्राप्त करता है । देवी की पूजा में साधक यदि स्वयं समर्थ न हो तो गुरु को नियुक्त करे । देवी की पूजा नित्य अवश्य करनी चाहिये । देवी की नैमित्तिक और काम्य पूजा भी की जा सकती है । आवरण देवताओं की भी फल पुष्प से पूजा करनी चाहिये । देवी का यज्ञमय शरीर इस प्रकार है—ध्यान पूजा जप होम चारों हाथ हैं । न्याससमूह—शरीर, देवी का ज्ञान—आत्मा, भक्ति—शिर, श्रद्धा—हृदय, कौशल—नेत्र माना गया है । यज्ञ-पुरुष सर्वाङ्गपूर्ण होने पर ही फल देता है । अङ्ग की हीनता अथवा आधिक्य दोनों पापदायक है ।

समय और स्थान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और मङ्गलवार साथ हों तो यह महाभूत दिन कहलाता है । यदि इसी दिन पुष्य नक्षत्र हो तो यह मुहूर्त्त अनन्त फलप्रद होता है । श्मशान में शव के ऊपर बैठकर पूजा की जा सकती है । अपने घर के अन्दर, बाहर, नदी-नद का

तट, कामरूप जालन्धर आदि पवित्र पीठ, शिवालय, शिवक्षेत्र, शिवलिङ्ग के समीप, विष्णुक्षेत्र, विष्णु का मन्दिर, विष्णुपीठ ये सब साधना के उत्तम स्थल हैं।

**पचीसवाँ पटल**—अनुष्ठान के लिये पवित्र क्षेत्रों के वर्णन क्रम में कहा गया है—नदी तीर, पर्वत की गुफा, पर्वत की चोटी, तीर्थस्थान, नदियों के सङ्गम, पवित्र वन, वेल का मूल, पर्वत के पास की भूमि, तुलसी का वन, वृक्षशून्य गोशाला, शिवालय, पीपल आँवला के नीचे की भूमि, गोशाला, जल के मध्य की भूमि, देवालय, समुद्र का तट, अपना घर ये सब पुण्य स्थान है । वाराणसी में की गयी पूजा पूर्णफल देती है । उससे दो गुना फल द्वारिका में की गयी पूजा से मिलता है । प्रयाग पुष्कर नन्दिकुण्ड आदि में गुणित फल मिलता है । कामाख्या योनिमण्डल में की गयी पूजा सबसे अधिक फल देती है ।

साधक को अशौच दोष नहीं लगता । गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य से पूजा करनी चाहिये । चक्रदेवता की पूजा पुष्पाञ्जलि से करनी चाहिये । कुमारी भोजन भी आवश्यक होता है । अपने हदृय के अन्दर देवी की पूजा सर्वोत्कृष्ट होती है। इसमें अपने शरीर को ही अलंकृत करना, मन्द मुस्कानयुक्त होना, सुमधुर भोजन करना, सुखदु:ख में समभाव रहना इत्यादि कृत्य विहित हैं । किसी सङ्कट की स्थिति में मानस पूजा का त्याग नहीं करना चाहिये ।

मनुष्य लोक में भारतवर्ष श्रेष्ठ है । वहाँ के लोग पुण्यवान् और ज्ञानी हैं । अन्य देशों के लोग जो पशुवत् जीवनयापन करते हैं वे मरने के बाद प्रेतलोक में जाते हैं । इसी प्रकार भक्ष्याभक्ष्य का विचार न कर धनचिन्तापरायण लोग निशाचरलोकवासी होते हैं । जो लोग केवल शिश्न और उदर के सुख में लगे रहते हैं वे यक्ष लोक में जाते हैं । आचारवान् पुरुष पितृलोक में निवास करते हैं। जो मनुष्य गङ्गा के आसपास भारत के मध्य देश में रहते हैं, दान-भोगपरायण, श्रुति स्मृति के अनुसार आचरण करने वाले हैं वे लोग देवलोक को प्राप्त होते हैं । देवी के त्रैगुण्यहारी पीठ पर जो योगी भोगयुक्त होकर भी देवी के साथ तादात्म्य भाव से अर्चन पूजन करता है वह देवी की कृपा से निस्त्रैगुण्यवान् हो जाता है ।

**छब्बीसवाँ पटल**—इस पटल में दीक्षा, सद्गुरु, सत् शिष्य के लक्षण आदि का वर्णन है । दीक्षा उसे कहते हैं जो १. दिव्य ज्ञान दे और २. पाप का क्षय करे । भगवान् शिव दक्षिणामूर्त्ति के रूप में प्रथम गुरु हुए । इन्होंने तीन शिष्यों प्रकाश विमर्श और आनन्द की रचना की । ये तीन गुरु दिव्यौघ कहलाये। इनसे तीन और उनसे भी तीन उत्पन्न हुए । इस प्रकार नव गुरु मण्डली बनायी गयी।

गुरु का लक्षण बतलाते हुए कहा गया कि उसे सुन्दर शान्त दान्त निर्लोभी तथा अनेक गुणों से युक्त होना चाहिये । ऐसा ही गुरु शिष्य का कल्याण करता

है । इसके विपरीत गुणों वाला दुःखदायी होता है । शिष्य को भी विशुद्ध शरीर मुख वाला, परनिन्दा विमुख, दयावान्, अलुब्ध, तथा अन्य श्रेष्ठगुणों से युक्त होना चाहिये । गुरु-मन्त्र-देवता में दृढ़ भक्ति वाला शिष्य गुरु को सुख देता है । शुभ मुहूर्त्त में शिष्य गुरु के पास जाय और उनकी आज्ञा से उनके समीप बैठकर उनकी सेवा करे । गुरु के साथ ऋण का आदान-प्रदान क्रय-विक्रय नहीं करना चाहिये । उनकी छाया आदि का लङ्घन नहीं करना चाहिये ।

गुरु को चाहिये कि वह एक वर्ष तक शिष्य को अपने पास रखे और उसके बाद परीक्षा कर उसे दीक्षा दे । जहाँ तक दीक्षाकाल का प्रश्न है शरत्काल एवं वैशाख मास श्रेष्ठ हैं । फाल्गुन अगहन और ज्येष्ठ मध्यम तथा शेष मास अधम हैं । शुद्ध उत्तम काल में ही दीक्षा देनी चाहिये । दीक्षा तीन प्रकार की होती है—१. मान्त्री—जो मन्त्र पूजन ध्यान योग आदि के द्वारा की जाय वह मान्त्री दीक्षा होती है । २. सिद्ध पुरुष अपनी शक्ति को देखकर उसके द्वारा शिशु को जो दीक्षा देता है वह शाक्ती दीक्षा होती है । ३. आचार्य शिष्य की अभिसन्धि के विना गुरु केवल कृपाकर जो दीक्षा देता है वह शाम्भवी दीक्षा कही जाती है ।

आगे चलकर अधिवास-विधि, वास्तु देवता के लिये बलि तथा क्षेत्रपाल बलि की चर्चा की गयी है । मण्डप-निर्माण के सन्दर्भ में कहा गया कि उसमें सुन्दर वेदी पताका ध्वजा आदि रहने चाहिये । कदलीस्तम्भ आदि से सुशोभित उस मण्डप, चक्रराज तथा दीक्ष्य वटु का पञ्चगव्य से अभिमन्त्रण करना चाहिये । इससे सकल पदार्थ की शुद्धि तथा पापों का नाश होता है । तत्पश्चात् स्नान के द्वारा शुद्ध होकर शिशु यज्ञ करे । होम के बाद स्वप्नमात्र का उच्चारण करते हुए गुरु शिष्य को पूर्व शिर कर सुलाये । प्रात:काल उठकर शिष्य स्वप्न की चर्चा गुरु से करे । अशुभ स्वप्न होने पर मूलमन्त्र से अग्नि में एक सौ आहुतियाँ देनी चाहिये ।

**सत्ताईसवाँ प्रटल**—इस पटल का विषय मण्डप-प्रवेश, होम, पञ्चमकार, शिष्य पाश दहन, पादुका इत्यादि है । शिष्य को चाहिये कि वह आचार्य एवं ब्राह्मणों का वरण कर नारी तथा ब्राह्मणों के साथ जयघोष करते हुए मण्डप में प्रवेश करे । वहाँ कलश का पूजन कर उसमें वह्नि सोम और सूर्य की उनकी कलाओं के साथ पूजा करे । आँख बन्द कर हाथ की अञ्जलि में पुष्प लेकर फेंके । पश्चिम उत्तर पूर्व और ईशान कोण में फूलों का गिरना शुभ और अन्य दिशाओं में गिरना अशुभ माना जाता है । अशुभ दिशा में पुष्पपात होने पर होम करना चाहिये । इसके बाद अङ्गों एवं आवरण देवताओं की पूजा कर होम करने के बाद त्रिपुरसुन्दरी के लिये त्रिमधु से हवन करे । मन्द अग्नि में हवन नहीं करना चाहिये । ऐसा करने पर रोग या मृत्यु होती है । धूमाकुल अग्नि में हवन

करने पर यजमान अन्धा होता है और पुत्र आदि के सहित नष्ट हो जाता है ।

होम के अनन्तर शिष्य का मुख ढँककर देवी से प्रार्थना करनी चाहिये कि इस दीन शिष्य के ऊपर दया करो । इसके पश्चात् गुरु शिष्य को सिद्धान्त सुनाये। इसके पश्चात् अन्तरात्मा के स्वरूप का निरूपण करे । यही पुरुषार्थ है । गुरु के सम्प्रदाय का ज्ञान सिद्धि देता है । गुरु के वाक्यों में विश्वास से सर्वसिद्धि मिलती है । गुरु मन्त्र देवता मन और प्राण की ऐक्य भावना से अन्तरात्मा का ज्ञान होता है । पञ्चमकार का सेवन ब्रह्म का अभिव्यञ्जक है क्योंकि ब्रह्म आनन्दरूप है और वह उनके सेवन से प्राप्त होता है ।

इसके पश्चात् इस पटल में निषिद्ध कर्मों का वर्णन किया गया है । किसी भी सम्प्रदाय की निन्दा नहीं करनी चाहिये । काम क्रोध लोभ तथा लोकनिन्दित कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये । फलरहित कर्म नहीं करना चाहिये । शिव को अग्नि समझकर उसमें अपनी आहुति देनी चाहिये । वेद आदि समस्त शास्त्र वेश्या के समान हैं केवल आत्मविद्या ही वरेण्य है । उसी की दीक्षा देनी चाहिये। गुरु को यह भावना करनी चाहिये कि शिष्य के शिर पर शिवशक्ति के चरणों से गिरे अमृत से शिष्य का मांसबृंहित शरीर धुल गया है । फिर मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक जलती हुई अग्नि के समान उष्ण एवं करोड़ों सूर्य के समान दीप्यमान कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा शिष्य के पापरूपी पाश को जला देना चाहिये । एतदनन्तर गुरु शिष्य से कहे कि वह स्वयं शिव हो गया है—ऐसी भावना करे । तत्पश्चात् स्वयं शिव होकर सन्देहहीन होता हुआ गुरु शिष्य के शिर का शिवहस्त से स्पर्श करे एवं अपनी आत्मा से शिष्य की आत्मा का संयोजन कर दे । वर्णात्मक चौकोर यन्त्रराज पर शिष्य को बैठाकर कलश से मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ गुरु शिष्य को स्नान कराये । इसके पश्चात् उसे अलंकृत कर अपने पास बैठाये । उसके अङ्गों में मातृकान्यास कर विद्याङ्गन्यास करे । शिष्य के मुख से वस्त्र हटाकर तत्त्वमन्त्र का उच्चारण करता हुआ ग्रासमुद्रा से उसे भोजन कराये ।

गुरु बालाबीज से युक्त पादुका को शिष्य को दे दे । यह बालामन्त्र शिष्य के दाँयें कान में सुनाये । अपने पैर को शिष्य के शिर पर रखकर मन्त्रों को एक या अनेक बार सुनाये । शिष्य के हाथ से अपने अङ्गों का स्पर्श कराने के बाद शिष्य का नामकरण करे । 'आनन्दनाथ' के पहले दो तीन या चार अक्षर जोड़ना चाहिये । इसके बाद आचार का उपदेश देकर हृदयस्थ चैतन्य का स्पर्श करे । शिष्य का आलिङ्गन कर शिष्य को पूर्ण तथा आत्मरूप समझे । अपनी शक्ति के क्षय की पूर्त्ति के लिये गुरु एक हजार आठ बार मूल मन्त्र का जप करे ।

तत्पश्चात् शिष्य कृपणतारहित होकर गुरु को सर्वस्व समर्पित कर दे । गुरु

की स्तुति करने के बाद गुरु शिष्य को आशीर्वाद दे कि हे पुत्र! परादेवी भोग और मोक्ष दोनों को देती है इसलिये तुम तन्मनस्क हो जाओ । तुम्हारे अन्दर द्वैत भाव न हो । पैर पर पड़े शिष्य को दोनों हाथों से उठाकर गुरु उसे आशीर्वाद दे कि मैं प्रसन्न हूँ मेरे आशीर्वाद से तुम्हें सब सिद्धियाँ सुलभ हों । उक्त अनुष्ठान के बाद शिष्य कुमारी ब्राह्मण दीन अन्धे कृपण आदि को भोजन कराये । उनसे भी आशीर्वाद लेकर जाति बन्धुओं को पुष्प माला भोजन आदि से तृप्त करने के बाद वह सर्वमन्त्र का अधिकारी बन जाता है ।

**अट्ठाईसवाँ पटल**—इस पटल में त्रिपुरसुन्दरी की पुरश्चरण-विधि का वर्णन किया गया है । गुरु की आज्ञा लेकर उसके बाद अपने को देवीमय समझते हुए एक हजार आठ या पचार हजार जप करने के बाद पुरश्चरण करना चाहिये । गुरु की आज्ञा लेना अनिवार्य है । किसी भी मन्त्र की सिद्धि में तीन प्रतिबन्धक होते हैं—१. आलस्य, २. अश्रद्धा और ३. पूर्वजन्मकृत पाप । तीनों को दूर करने के लिये पुरश्चरण आवश्यक होता है । यह कार्य गुरु से करवाना चाहिये । गुरु के अभाव में आचारवान् ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिये ।

पुरश्चरण के लिये किसी पवित्र क्षेत्र का चयन कर चतुर्दशी अष्टमी या अमावस्या के दिन इसका प्रारम्भ करना चाहिये । जिस ग्राम नगर या देश में पूजा होनी है वहाँ दीपस्थान का विचार कर कूर्मचक्र की रचना करनी चाहिये । फिर उस चक्र में दीप स्थान का निर्णय कर जप पूजा का आरम्भ करना चाहिये। प्रणव अक्षमाला और मायाबीज ये तीन अमृत है । इन तीनों के योग से दुष्टमन्त्र भी सिद्ध हो जाता हैं । वर्णमाला के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की माला भिन्न-भिन्न लक्ष्य की सिद्धि देती है जैसे—वाक्सिद्धि मोक्ष के लिये मोती की, वशीकरण के लिये मूँगा की, भोग मोक्ष तथा अनन्त फल के लिये रुद्राक्ष, मारण उच्चाटन आदि में खोपड़ी की माला प्रशस्य होती है । एक प्रकार की माला से जप का प्रारम्भ करने पर बीच में दूसरी माला से जप नहीं करना चाहिये ।

अनुष्ठान काल में दही दूध घी आदि विहित अन्न ग्रहण करना चाहिये । उड़द गुड तेल मांस गाजर आदि निषिद्ध पदार्थों का सेवन वर्जित है । रात्रि में जप नहीं करना चाहिये । भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, मौन, अनसूया के नियमों, नित्यपूजा, नित्यदान आदि बारह नियमों का पालन मन्त्रसिद्धि प्रदान करता है । स्त्री शूद्र पतित से बातचीत, असत्य कुटिल वचन वर्जित है । जप होम पूजन के समय सभ्य लोगों से भी भाषण न करे । गीत नृत्य अनुलेप प्राणिहिंसा असङ्कल्पित कार्य, उष्णोदकस्नान क्षौर देवता को अनिवेदित भोजन का त्याग करना चाहिये । शिवाङ्ग को बाहर भीतर पञ्चगव्य से धोना चाहिये । स्नान भी पञ्चगव्य से करना चाहिये ।

अशुद्ध हाथ, नग्न, शिर ढँककर, आसनरहित होकर, चलते, खड़े होकर, अपवित्र स्थान में, प्रकाशरहित स्थान में, बात करते हुए जप का फल नहीं मिलता। एक बार मन्त्र से भिन्न शब्द का उच्चारण करने पर 'ॐ' कहकर जप करना चाहिये। छीङ्क जम्भाई, हवा खुलने, खाँसी इत्यादि आने पर जप रोककर आचमन करे फिर जप करे। प्रतिदिन शय्या को धुले। एकाकी शयन करे। देवता गुरु मन्त्र के ऐक्य को मन में सोचते हुए न बहुत विलम्ब और न बहुत शीघ्रता के साथ जप करे। जितनी संख्या का जप प्रथम दिन हुआ उतनी ही संख्या में नित्य जप करना चाहिये। न्यूनाधिक जप दोषाधायक होता है। दिन का लङ्घन नहीं करना चाहिये अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती।

जप की संख्या पूर्ण होने पर आँख में पानी लगाना चाहिये। केवल गुरु को प्रणाम करना चाहिये। त्रिकाल स्नान, सत्सङ्ग, देवता को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। जितना जप किया गया है उसका दशांश हवन सुविहित कुण्ड एवं सुसंस्कृत अग्नि में करने का विधान है। होम न कर सकने की स्थिति में होम की संख्या का दोगुना मन्त्र-जप करने की विधि है। यह हवन प्रतिदिन या केवल अन्तिम दिन किया जा सकता है। हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन करना चाहिये। मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजना कराना चाहिये। इसके पश्चात् अभिषेक अघमर्षण सूर्यार्घ्य जलपान और प्राणायाम में पाँच कृत्य और करने पड़ते हैं। गुरु को सब प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मण भोजन अत्यावश्यक अङ्ग है। इसके विना सब निष्फल हो जाता है।

**उन्तीसवाँ पटल**—प्रस्तुत पटल में मन्त्रसिद्धि और उसके अनेक प्रकार के अर्थों की चर्चा की गयी है। कौल-परम्परा के अनुसार अपने शरीर को यथाशक्ति अलंकृत कर साथ में रहने वाली शक्ति को भी उसी प्रकार आभूषण आदि से सुसज्जित कर ताम्बूलपूरित मुख होकर मध्य रात्रि में जप करना चाहिये। मूलाधार हृदय त्रिकोण और शिर के त्रिकोण क्रमशः स्वयम्भू बाण एवं इतर लिङ्ग कहे जाते हैं। इनमें एक-एक लाख जप करने का नियम है। ऐसा करने पर जापक देववत् हो जाता है। इसके पश्चात् नवलाख जप करना होता है। इससे सिद्धियाँ मिलती हैं। एक करोड़ जप होने पर मन मन्त्रमय हो जाता है। ऐसा होने पर ध्यान का ब्रह्मार्पण होने के बाद साधक सर्वज्ञ हो जाता है।

जप के नव स्थान हैं—१. मूलाधार, २. मेढ्र (= लिङ्ग), ३. नाभि, ४. हृदय, ५. कण्ठ, ६. भ्रूमध्य, ७. भ्रूमध्य के ऊपर, ८. लम्बिका और ९. लम्बिकोर्ध्व भाग (= सहस्रार)। इन नव स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप एवं प्रभा वाले लिङ्ग का ध्यान करते हुए इन नव स्थानों का भेदन करने के बाद पुनः कुण्डलिनी को मूलाधार में ले आना चाहिये। वहाँ त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र का नव लाख जप करने पर साधक दूसरा शिव हो जाता है। मन्त्र का जप मन्त्र को

जात एवं मृत सूतक से हीन करके करना चाहिये । सूतकरहित होने पर मन्त्र चैतन्य एवं वीर्य सम्पन्न हो जाता है अन्यथा वह वर्णसमूह मात्र जड़ रहता है ।

मन्त्र के अनेक अर्थ होते हैं—भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ एवं महातत्त्वार्थ । भावार्थ का अर्थ है अक्षरार्थ । इसमें मन्त्र का स्वरूप शिव शक्ति के यामल रूप का समझा जाता है क्योंकि मन्त्रों के अक्षर या तो शिव या शक्ति के प्रतीक होते हैं । त्रिपुरा मन्त्र का पहला भाग = हसकलह्रीं—वाग्भव कूट है । यह वामा शक्ति का सङ्केतक है । इसके देवता ब्रह्मा हैं और यह पूर्वाम्नाय से सम्बद्ध है । दूसरा भाग = हसकहलह्रीं कामराजकूट है । यह ज्येष्ठा शक्ति से संवलित विष्णुदैवत तथा दक्षिणाम्नाय से सम्बद्ध है । तीसरा भाग सकलह्रीं शक्तिकूट है । यह रौद्री शक्ति से संवलित रुद्रदैवत तथा पश्चिमाम्नाय से सम्बद्ध है । इन तीनों कूटों के अन्त में स्थित 'ह्रीं' अम्बिका शक्ति का द्योतक है । हकार अग्नि रूप होने के कारण भेद का संहार करता है । रेफ कालाग्नि रूप होने से पापों का नाश करता है । बिन्दुयुक्त ईकार अमृतत्व की उत्पत्ति कर कामनाओं की पूर्त्ति करता है । इसी प्रकार हसकलह्रीं आदि तीनों भाग सृष्टि स्थिति संहार को बतलाते हैं । 'ह्रीं' का ई शिव-शक्ति की यामल अवस्था जिसे अनाख्या कहते हैं, को बतलाता है ।

जहाँ तक सम्प्रदायार्थ का प्रश्न है हसकलर ये वर्ण क्रमश: आकाश जल वायु पृथिवी एवं अग्नि के द्योतक हैं । यह विश्व पञ्चभूतमय है । त्रिपुरसुन्दरी विश्वमयी है । इन भूतों में पन्द्रह गुण हैं । वे इस प्रकार हैं—आकाश का गुण शब्द, वायु का शब्द स्पर्श, तेज का शब्द स्पर्श रूप, जल का शब्द स्पर्श रूप और रस तथा पृथिवी का उक्त चार के साथ गन्ध । मूल मन्त्र में भी पन्द्रह अक्षर हैं । इनमें स्वरों तथा व्यञ्जनों की संख्या ३७ है । वह इस प्रकार है—ह्+अ, स्+अ, क्+अ, ल्+अ, ह्+र्+ई+म् । ह+अ, स्+अ, क्+अ, ह्+अ, ल्+अ, ह्+र् ई+म् । स्+अ, क्+अ, ल्+अ, ह्+र् ई+म् । ये छत्तीस हुए । इनकी समष्टि को एक मान कर कुल संख्या सैंतीस होती है । उक्त छत्तीस वर्ण छत्तीस तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

निगर्भार्थ में शिव गुरु शिष्य एवं मन्त्र की एकता का प्रतिपादन होता है ।

कौलिकार्थ के विषय में ग्रन्थकार का कथन है कि यहाँ मन्त्र यन्त्र और गुरु का ऐक्य प्रतिपादित होता है । यन्त्र या चक्र एक सौ ग्यारह देवता का उत्कृष्टतम रूप होता है । उनमें त्रिपुरसुन्दरी मुख्य देवता है । इच्छा ज्ञान क्रिया, नवग्रहों, सूर्य चन्द्र और अग्नि में भी वही स्फुरित होती है । ज्ञान-कर्म इन्द्रियों, उनके विषयों, मन बुद्धि अहङ्कार में सर्वत्र वही प्रकाशित होती है । अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र, डाकिनी हाकिनी आदि छह योगिनी, अकच आदि आठ वर्ग,

प्राण अपान आदि दश वायु, जीवात्मा परमात्मा, राशि, बीज बिन्दु आदि सबके सब देवी के ही स्वरूप हैं। सम्पूर्ण विश्व उसी का स्फार है। गुरु का देह भी देवी के देह-सदृश होता है। उसकी कृपा से शिष्य भी देवीरूप हो जाता है।

शिष्य शरीरस्थ सहस्रार के मध्य में त्रिकोण, वहीं पर बिन्दु में क्लीं बीज का ध्यान करना चाहिये। इसी प्रकार ललाट के ऊर्ध्व भाग में स्थित मूलाधार कुण्डलिनी, ललाट के मध्य में तीन इन्द्र (= ल) इसी प्रकार अन्य शारीर स्थानों में भिन्न-भिन्न अक्षररूपा देवी का ध्यान करना चाहिये। सर्वरहस्यार्थ के सन्दर्भ में कहा गया है कि मूलाधार जो कि 'ऐं' के आकार का है, में अँड़तीस कलाओं से युक्त पचास वर्णों वाली कुण्डलिनीरूपा मन्त्र विद्या का ध्यान करना चाहिये। महातत्त्वार्थ का तात्पर्य यह है कि आत्मतत्त्व को निष्फल परमसूक्ष्म प्रकाशानन्दरूप एक साथ विश्वोत्तीर्ण-विश्वमय तत्त्व से जोड़ देना चाहिये।

**तीसवाँ पटल**—इस पटल में अजपा विद्या से लेकर तीन मन्त्र कूटों का वर्णन किया गया है। हंस बीज (= हं सः) को अनुलोम, विलोम (= सोऽहम्) जपना चाहिये। इस बीज में हकार शुक्ल और सकार रक्त वर्ण का है। इस मन्त्र की भावना की जाती है, जप नहीं। ह प्राण का और स आत्मा का प्रतीक है। इसी प्रकार ह शिव का और स शक्ति का प्रतीक है। दोनों के ऐक्य की भावना से मोक्ष मिलता है। संस्कृत व्यञ्जन वर्णों के साथ स्वर मिलकर उन्हें सप्राण बनाते हैं। इसी प्रकार बिन्दु और विसर्ग उन्हें चेतन बनाते हैं। इसलिये अक्षरों का स्वर एवं बिन्दु का विसर्गयुक्त उच्चारण करना चाहिये।

बोधिनी विद्या के स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया कि ऐं श्रीं ह्रीं हंसः ईं सोऽहं ह्रीं श्रीं ऐं बोधिनी विद्या है। ओं ह्रीं श्रीं हंसः ईं सोऽहं श्रीं ह्रीं ओं यह दीपिनी विद्या है। वाग्भव बीज को जीवनी विद्या कहते हैं। इसी के द्वारा साधक कुल अर्थात् मूलाधार से अकुल अर्थात् सहस्रार तक जाता है। फिर वहाँ से मूलाधार तक आता है। इस प्रकार आवागमन करता हुआ जीव ब्रह्मग्रन्थि का भेदन कर जिह्वा तक आता है। वहाँ अमृत-पान करता है। सञ्जीवनी मन्त्र का एक लाख जप सर्वपापहर होता है। इसी प्रकार कामराजकूट में कामकला बीज की सिद्धि से साधक समस्त संसार को वश में कर लेता है। कामकला बीजस्वरूपा विद्या उगते हुए सूर्य अथवा लाक्षारस के समान रक्त वर्ण की होती है। यह भी मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है। सारे भुवनों के जीवन को आत्मसात् कर लेती है। तीसरा कूट शक्तिकूट है। इसका भी मूलाधार से शक्तिकूट तक और फिर मूलाधार तक आना-जाना होता है। यह शरीर में अमृत की धारा बरसाता है। स्थावर जङ्गम विषों तथा महारोग का नाशक है।

कामकला का वर्णन करने हुए बतलाया गया कि यह तीन प्रकार की है—

स्थूल सम और सूक्ष्म । इसका स्थूल रूप इस प्रकार है—आकाश बिन्दु, चन्द्र सूर्य दो स्तन हैं । यह त्रिलोकी शरीर वाली है । एक दूसरे रूप में यह ईकार मुख अग्नि चन्द्र दोनों स्तन और हार्ध कला योनि है । एक अन्य रूप में ऊर्ध्व बिन्दु मुख, दो अधो बिन्दु स्तनद्वय, अन्य वर्ण शेष अङ्ग है । यह रूप बाह्य भावना के लिये है । आन्तर भावना में मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक कुण्डलिनी ही कामकला है । षट्चक्र भेदन करने वाली यह चराचर में व्याप्त है। यह त्रयीमयी है । सामवेद इसका मुख ऋग् यजु: दोनों स्तन है । अथर्ववेद हार्ध कला है । इसका चौथा स्वरूप साक्षात् ब्रह्म ही है ।

अभक्त और अशिष्य को इसे नहीं देना चाहिये । ऐसा करने पर साधक का विनाश हो जाता है । लोभ मोह या भय से इसका उपदेश करने वाला शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।

**इकतीसवाँ पटल**—इस पटल में होम और उससे सम्बद्ध विषयों का वर्णन है। चौकोर हवनकुण्ड में पलाश कुसुम्भ नागकेशर महुआ लालकमल आदि का हवन सर्वसिद्धिप्रद होता है । त्रिकोण कुण्ड त्रिपुरासुन्दरी को प्रसन्नता देने वाला होता है । स्थण्डिल पर भी होम किया जा सकता है । स्थण्डिल के ऊपर यन्त्र बनाकर मध्य में पुष्पाञ्जलि देकर हवनीय द्रव्य और उपकरण का संग्रह करने के बाद कुश-कण्डिका करनी चाहिये । मूलमन्त्र का उच्चारण कर 'स्थण्डिलाय नम:' से स्थण्डिल की पूजा कर त्रिकोण के मध्य कामेश्वर-कामेश्वरी के यामल रूप का ध्यान पूजन कर हवन करने की विधि है । इस क्रम में कामेश्वरी के गर्भ में अग्नि का ध्यान कर पुन: उसे एवं बाह्य अग्नि को एक कर पूजन करना चाहिये। षडङ्ग यागकर मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि का गर्भाधार आदि संस्कार करना होता है । अन्य कृत्य का सम्पादन भी वर्णित है । यह नित्य होम है । काम्य होम में मल्लिका मालती दुग्ध त्रिमधु छागमांस आदि के हवन से होता को प्राप्त इष्टसिद्धि की चर्चा की गयी है। पुष्प का सम्पूर्ण हवन करना चाहिये तोड़कर नहीं । लावा एक मुट्ठी, घी एक कर्ष, मधु आधा चुल्लू इसी प्रकार अन्य द्रव्यों की हवनीय मात्रा का उल्लेख कर यह कहा गया कि तत्तद् वस्तुओं की पृथक्-पृथक् उक्त परिमाण में आहुति देने पर सर्वसिद्धि मिलती है । सारी वस्तुओं को मिलाकर हवन करने में कोई परिमाण नहीं है ।

**बत्तीसवाँ पटल**—इस पटल में कहा गया कि पहले त्रिलोह के द्वारा एक अङ्गूठी बनाने की विधि बतलाकर उसे पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत से धोकर रखना चाहिये । वर्णमय कमल के ऊपर कलश की स्थापना कर उसके मध्य में उस अङ्गूठी को डाल देना चाहिये । उसमें परा देवी सम्मोहनी का आवाहन कर पूजन करना चाहिये । मातृकान्यास करने के पश्चात् वर्णमयी देवी तथा उसके चारो

ओर दिशाओं में रखे कुम्भों में व्यापिनी आदि की पूजाकर मुद्रिका का स्पर्श करते हुए जप करना चाहिये । जप के बाद होम का विधान है । बाद में शिष्य का अभिषेक कर उस अङ्गूठी को शिष्य को पहना देना चाहिये । यह सर्वरक्षाकरी मुद्रा तर्जनी में धारण की जाती है ।

रक्षाकरी मुद्रा नवरत्नों से भी बनती है । इस क्रम में पहले तत्तत् रत्नों में तत्तद् ग्रहों का आवाहन पूजन करना पड़ता है । फिर देवी का आवाहन पूजन कर मुद्रा को धारण करना पड़ता है । इससे सारे अनिष्ट दूर होते हैं तथा धन-धान्य की वृद्धि होती है ।

**तैतीसवाँ पटल**—इस पटल का विषय श्रीचक्र की प्रतिष्ठा है । प्रतिष्ठा तीन प्रकार की होती है—१. चक्रप्रतिष्ठा, २. मूर्त्तिप्रतिष्ठा और ३. शिष्यप्रतिष्ठा । शिष्य की प्रतिष्ठा दीक्षा से होती है । मूर्त्ति के सन्दर्भ में रत्न सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठा की जाती है । चक्रराज श्रीचक्र की प्रतिष्ठा शुभ घर में की जाती है । अधिवास आदि कृत्यों का सम्पादन कर आचार्य पहले पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत से चक्र का प्रक्षालन कर उसकी विधिवत् पूजा करने के बाद उसे पलङ्ग पर रखे । दिव्य अनुलेप से अनुलिप्त कर सुवस्त्र से ढँककर धूप दीप दिखाये । इक्यासी कलशों की स्थापना कर चौकोर मण्डल में गुरु शिष्य के साथ शयन करे ।

प्रात:काल सन्ध्या आदि करने के बाद विधिवत् मण्डप में प्रवेश करे । पूर्व की भाँति पूजन आदि सम्पन्न कर चक्र को इक्षुरस आदि से स्नान कराकर भद्रपीठ पर रखे । उस चक्र में देवी त्रिपुरसुन्दरी की भावना करनी चाहिये । आवाहन आदि कर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से देवी की उस चक्र में प्रतिष्ठा करनी चाहिये । इसी क्रम में यहाँ प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उद्धार भी बतलाया गया है । चक्र का स्पर्श करते हुए प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्राणप्रतिष्ठा की जाती है । तत्पश्चात् तीन दिनों तक उत्तम उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिये । एक सौ आठ बार प्रतिदिन हवन भी करना होता है । नाना प्रकार के वाद्य आदि से महोत्सव कर गुरु को दक्षिणा तथ प्रमदा स्त्रियों एवं ब्राह्मणों को भोजन, विविध वस्तु दान आदि से सन्तुष्ट करना चाहिये । देवी की पूजा यन्त्र मन्त्र अस्त्र शस्त्र प्रतिमा अग्नि शिवलिङ्ग आदि में की जाती है अन्यत्र नहीं ।

**चौंतीसवाँ पटल**—प्रस्तुत पटल में कुलाचार एवं उससे सम्बद्ध विषयों का वर्णन है । कौल परम्परा में त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के लिये मांस मद्य मैथुन आवश्यक अङ्ग हैं । इस अर्चा में उपवास अथवा व्रत आवश्यक नहीं है । दुर्गन्धयुक्त, रागहीन, अलङ्काररहित तथा रक्तपुष्प के विना अविश्वस्तहृदय अथवा अन्यासक्तचित्त से देवी की उपासना नहीं करनी चाहिये । तुलसी के पत्र-पुष्प से

देवी की पूजा निषिद्ध है । कन्यायोनि, नग्नस्त्री, निर्वस्त्रस्तन आदि को नहीं देखना चाहिये । भोजना उतना ही करना चाहिये जिससे शरीर स्वस्थ रहे । कलिकाल में निराहार व्रत वर्जित है ।

जहाँ तक बलिदान का प्रश्न है साधक को स्वयं पशुमारण नहीं करना चाहिये । जब दूसरा कोई पशु की गर्दन को अलग कर रहा हो उस समय 'उद्बुध्यस्व पशो......' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । एक ही पशु की बलि देने का विधान है । ब्रह्मज्ञान होने पर बलि नहीं देनी चाहिये । ब्रह्म, शक्ति और महेश्वर एक ही अर्थ के वाचक है । लिङ्गभेद केवल शाब्दिक है ।

देवी की पूजा करते समय थूकना छींकना बात करना अधोवायु छोड़ना निषिद्ध है । ऐसा करने वाला योगिनी का भक्ष्य हो जाता है । लोकधर्म का पालन करना चाहिये । पुरुषों के विषय में देवबुद्धि, गुरुपुत्र गुरुस्त्री में गुरुभाव रखना चाहिये । विशेष पर्वों पर कुलवृक्ष कुलास्त्रों और कुलपल्लवों से विशेष पूजा करनी चाहिये । स्वस्तुति परनिन्दा से दूर रहना चाहिये । अपने शरीर को वस्त्र अनुलेप आदि से अलंकृत रखना चाहिये । मदिराक्षी के साथ मदिरापान मत्त रहना चाहिये । लोगों के द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग अनासक्त चित्त होकर करना चाहिये । इन्द्रियों के चञ्चल होने पर पर्यटन करना चाहिये । अलङ्कार आदि से स्वयं विभूषित होते हुए शक्ति को भी विभूषित रखना चाहिये । उसे अपने से अभिन्न और अपने को त्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न समझने वाला साधक परमगति को प्राप्त होता है । वस्त्र भूषण आदि से पहले राजस फिर तामस और अन्त में सात्त्विक भावप्राप्त कर चतुर्थ अवस्था में पञ्चमकारपरायण होकर दिव्य भाव में स्थिर होना ही चरम लक्ष्य है ।

जिस साधक या राजा के राज्य में परिजन भाईबन्धु दुःखी तथा स्त्रियाँ दुश्चरित्र होती हैं; प्रजा पीड़ित रहती है उसके राज्य में पग-पग पर विपत्ति होती है और आयुष्ट्व तथा लक्ष्मी का नाश होता है । आयु और शान्ति के लिये राजा को चाहिये कि वह एक करोड़ होम करे । पुरश्चरण भी करने का विधान है । मद्यपान से जिसका ज्ञान लुप्त हो जाय और मन में विकार उत्पन्न होने लगे, वह अधोगति को प्राप्त होता है । मद्यपान से प्रलाप उन्माद क्रोध हास्य आवेश असूया आदि दोष उत्पन्न होते हैं । किन्तु उसका संस्कार कर अमृत रूप से पीने पर स्थितप्रज्ञता, समत्वभाव, ब्रह्मानन्द, निमेषहीनता, विकारराहित्य, मधुर भाषण आदि गुण साधक के अन्दर आ जाते हैं । वैराग्य, मुमुक्षुत्व, सर्वज्ञता आदि ऐश्वरी गुणों की अधिकता होने लगती है । अष्ट सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं ।

स्त्रियों के विषय में कहा गया है कि साधक को चाहिये कि वह उनको सन्तुष्ट और तृप्त रखे । एक पतिव्रता भार्या ही पर्याप्त होती है । कुलटा स्त्री

मूषक की भाँति कुल का क्षय कर देती है । जो स्त्री विना किसी प्रयत्न के साधक के साथ रमण की इच्छा करे वह भी स्वकीया ही मानी जाती है । धन आदि के द्वारा हठात् आकृष्ट कर परायी स्त्री के साथ गमन करने वाले नरक मे जाते हैं । यदि स्त्री दु:शील हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये उसकी प्रताड़ना या हत्या पाप है ।

**पैंतीसवाँ पटल**—इस पटल में काम्य पूजा आदि का वर्णन है । काम्यार्चन को अत्यन्त गुप्त रूप से करना चाहिये । प्रकट होने पर लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती । इस अनुष्ठान में शक्तिपूजा आवश्यक अङ्ग है । शक्ति से घृणा नहीं करनी चाहिये और दर्पवश उसे पुष्प से भी नहीं मारना चाहिये । शक्ति को भक्ति के साथ प्रणाम करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है । त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में होम आवश्यक है । होम के विना शक्तिपूजा निष्फल होती है । इसलिये शक्त्यर्चन आवश्यक है । इसमें जाति का ध्यान नहीं रखना चाहिये ।

शक्ति की पूजा निर्जन स्थान में आधी रात को की जाती है । साधक सर्वाभरणभूषित चन्दन आदि से युक्त होकर शक्ति को भी अलंकृत कर मूल्यवान् विस्तर पर उसे बिठाये । पानपात्र भी रहना चाहिये । मांस मत्स्य मुद्रा का भी होना अनिवार्य है । देवता की भाँति उसकी पूजा कर उसे सामने बैठी हुई साक्षात् कामेश्वरी समझना चाहिये । अपने को कामेश्वर समझते हुए शक्तिजिह्वा से विलोडित मद्य को बार-बार पीना चाहिये । मदिराघूर्णित लोचन तथा नग्न होकर शक्ति से प्रार्थना करनी चाहिये । कौलिक पूजा में बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती । शारीरिक क्रियायें ही उपचार होती हैं । जैसे नखक्षत दन्तक्षत पुष्प, आलिङ्गन चन्दनलेप, चुम्बन स्तुति होती है । इस प्रकार कुलपूजा करने वाला कुलीन कहलाता है । एक मास तक पूजा करने से आकर्षणसिद्धि प्राप्त होती है । इसी प्रकार छह मास में वह रुद्र हो जाता है । कौलपूजा रात्रि में की जाती है किन्तु बाह्यपूजा प्रात: ही करनी चाहिये । मध्याह्न पूजा को योगिनी एवं सायं पूजा को राक्षसी ले लेती हैं ।

**छत्तीसवाँ पटल**—इस पटल में परशक्ति का आनयन, कौलिकी दीक्षा, वसन्तसुन्दरी ध्यान आदि की चर्चा की गयी है । दूसरी अदीक्षित स्त्री के साथ सङ्गम करने से सिद्धि की हानि होती है । अपनी शक्ति (पत्नी) को गुरु के पास ले जाकर दीक्षित करना चाहिये । गुरु उसे अपनी पुत्री समझे । दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी को कच्चे शराब में षट्कोण यन्त्र बनाकर सिन्दूर से स्त्री की प्रतिमा बनाये। कपोल पर साध्य का नाम मन्त्र से सम्पुटित लिखकर समस्त अङ्गों की सन्धियों में कामबीज लिखे । प्रतिमा के मुख में पुष्प का आसव देकर वसन्तसुन्दरी मन्त्र का जप करना चाहिये । अपनी शक्ति को बायें बिठाकर उसके

कन्धे पर अपना हाथ रखे । प्रतिमा के ऊपर न्यास करे । फिर पूर्वोक्त विधि से उसकी पूजा करनी चाहिये। देवी का ध्यान करते हुए एक लाख जप करना चाहिये ।

इस प्रक्रिया में एक भिन्न प्रकार का होम विहित है । निर्जन शुद्ध स्थान में पद्मासन लगाकर बैठा हुआ साधक पूरक कुम्भक रेचक प्राणायामों के द्वारा नाडी-शोधन करे । नेत्रों को निमेषोन्मेषरहित कर नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करे । दाँत से दाँत ओष्ठ से अधर को लगाते हुए जिह्वा को तालु में सटाये । यह सुन्दरी मुद्रा है । सहस्रदल कमल में मूलाधार से उठी वायु से दीपशिखा के समान अमृतमण्डल को क्षुब्ध कर मूलाधार कमल में अमृतधारा का गिरते हुए ध्यान करे । इस प्रकार सात बार करना चाहिये । हृदयस्थ बाणलिङ्ग में आद्या भगवती की पूजा करनी चाहिये । यह पूजा भावनात्मक होती है जिसमें कुण्डलिनी पात्र होती है । छत्तीस तत्त्व गन्ध का काम करते हैं । अहिंसा आदि पुष्प हैं; इत्यादि ।

सहस्रदल के मध्य सुन्दरी का ध्यान करना चाहिये । उसी कमल के मध्य योनियुक्त भैरवानन्द लिङ्ग का ध्यान करते हुए दोनों के ऐक्य से अमृतस्राव कर जिह्वा को गले के अन्दर संयुक्त कर उस अमृत को पीना चाहिये । पृथिवी में जल, जल में शून्य, शून्य में वायु उसमें ध्वनि, ध्वनि में नाद, नाद में बिन्दु, उसके मध्य ज्योति जो कि निराकारा निरात्मया है वही परा सुन्दरी है ।

पृथिवी आदि का पृथिवी आदि में लय करते हुए ज्योति का लय ब्रह्म में, उसी में मन का लय करना चाहिये । मन के न रहने पर पाप-पुण्य कुछ नहीं होता। कुण्डलिनीरूपी कुण्ड में सांसारिक प्रपञ्चरूपी हवि का होम करना चाहिये । यहाँ आत्मा अग्नि है । धर्म अधर्म हवि से वह अग्नि दीप्त है । सुषुम्ना के मार्ग से इन्द्रियों की वृत्तियों का होम किया जाता है । ऐसा करने से साधक चिन्मय ब्रह्म हो जाता है ।

**सैंतीसवाँ पटल**—यह पटल शक्ति से सम्बद्ध है । वैदिक नियम के अनुसार स्त्री मोक्षमार्ग में बाधक होती है किन्तु तान्त्रिक साधना में वही मोक्ष का द्वार है। धर्म की गति विचित्र है । सर्वभोजी अग्नि, सर्वसेवी जल शुद्ध माना जाता है । इसी प्रकार मक्षिकोच्छिष्ट मधु, रक्त से बना गो दुग्ध आदि, अनर्थकारी मद्य सब के सब यज्ञोपयोगी माने जाते हैं । इसलिये जिस सम्प्रदाय में जो विहित है वही उसके लिये धर्मसाधन है । तान्त्रिक सम्प्रदाय में शक्ति तथा मद्य आदि अनिवार्य हैं किन्तु उनमें द्वैत भावना नहीं होनी चाहिये । विधिपूर्वक इनका सेवन मोक्षदायी होता है । मन के ब्रह्म में लीन एवं अद्वैत भाव को प्राप्त होने पर मेध्यामेध्य ग्राह्याग्राह्य भक्ष्याभक्ष्य का भेद नहीं रहता । यह भेद अविद्याजन्य है ।

शक्ति को पराविद्या समझना चाहिये । उसी के अनेक नाम अनेक रूप अनेक शरीर हैं । शक्तियाग में मांस अमृत होता है । उसके लिये पशु का वध न करने वाला ब्रह्मघाती समझा जाता है । यदि वासना शुद्ध है तो मद्यपान भी पवित्र है । यह समस्त सृष्टि प्रकृति की रचना है । उसी की माया से मोहित जीव अपने को कर्त्ता समझता है । उसका कर्तृत्व स्फटिक मणि में जवापुष्प की रक्तता के समान है। इसलिये चित्त को ब्रह्म में लीन कर कर्म करने से मनुष्य पापपुण्य से लिप्त नहीं होता । जिस प्रकार दो कुम्भ से अथवा एक नाव से जल को पार करते हैं । उसी प्रकार कौलमार्ग या दक्षिण मार्ग से भवसागर को पार किया जा सकता है । यह सब माया शक्ति का खेल है । उसके प्रकृति विद्या अविद्या महाविद्या अनेक नाम है। ब्रह्मा आदि उसी की उपासना करते हैं । योग भोग आदि के द्वारा उसकी आराधना से भोग-स्वर्ग दोनों मिलते हैं । विना शक्ति को सन्तुष्ट किये मुक्ति नहीं मिलती । वेदमाता गायत्री शक्ति की उपासना से ही ब्रह्मा-सरस्वती, विष्णु-लक्ष्मी और शिव-शक्ति के साथ मिलकर अपना-अपना कृत्य करते रहते हैं । जो लोग विष्णु भाव के उपासक हैं वे उसी भाव से उपासना कर भावसिद्धि प्राप्त करते हैं । यह क्रम पशुभाव उत्पन्न करता है । इस विषय में कहा गया कि विष्णु की प्रेरणा से शिव ने वैष्णव तन्त्र की रचना की ।

वैष्णव तन्त्र में शक्ति दो रूपों में वर्णित है—१. स्थूला और २. सूक्ष्मा । स्थूल रूप से वह देवी तीनों लोक को मोहित की हुई है । इसलिये लोग उस रूप में स्थित नारी को मारते पीटते और गालियाँ देते हैं । कुछ लोग उसको आभूषण वस्त्र सेवा सम्भोग से प्रसन्न रखते हैं । कुण्डलिनी शक्ति को प्राण के द्वारा सहस्रारस्थ परानन्द के साथ संयुक्त करने पर उससे निकलने वाले अमृत से कुण्डलिनी के मुख में हवन करना चाहिये । इसमें चन्द्रमा और सूर्य स्रुक् और स्रुवा का काम करते हैं। ऐसा करने से देह नीरोग होकर यथाकामी हो जाता है।

**अँड़तीसवाँ पटल**—शक्ति भोग से जितनी सन्तुष्ट होती है तप और योग से उतनी नहीं । ईश्वर कहते हैं कि मैंने भी योग से उसे सन्तुष्ट करना चाहा । मुझे शक्तिहीन देखकर ब्रह्मा और विष्णु ने देवीसूक्त से देवी को सन्तुष्ट किया । सन्तुष्ट होने पर देवी ने वरदान देने की इच्छा व्यक्त की । ब्रह्मा ने कहा—हे माता! मेरे विष्णु एवं रुद्र के अन्दर सृष्टि पालन और संहार की शक्ति दो । शिव को अपनी माया से मोहमय करो । देवी ने कहा—मैं सती रूप से शङ्कर को मुग्ध करूँगी। पुन: उस शरीर का त्याग कर पार्वती रूप में प्रकट होऊँगी । देवी के अन्तर्हित होने पर विष्णु ने ब्रह्मा की प्रार्थना पर शिव में वीरभाव का निवेश किया । ईश्वर ने देवी की स्तुति की और उसके परिणामस्वरूप देवी ने शिव को अपना विराट् स्वरूप दिखलाया ।

**उनतालिसवाँ पटल**—देवी ने महादेव से कहा कि पुरुष और प्रकृति दो तत्त्व नित्य हैं । प्रकृति गुणवती और बलवती है; पुरुष निर्गुण और निर्बल है । मैंने सृष्टि की इच्छा से पुरुष को प्रेरित किया और फिर वह आनन्दयुक्त होकर मेरे साथ आनन्दित हुआ । दोनों के जड़ होने से शून्य की उत्पत्ति हुई । उस शून्यभाव से आद्या शक्ति पैदा हुई । वह त्रिगुणमयी और त्रिविन्दुरूपा हुई । शिव के साथ विपरीत रति के द्वारा वह अर्ध हकार रूपा होकर अग्नि चन्द्र और सूर्य रूपिणी हो गयी । यह सृष्टि तीन बिन्दुओं में स्थित है । पञ्चभूतमयी यह सृष्टि असत्य है और जो सत्य सदृश दिखती है वह भ्रम है ।

इस पाञ्च भौतिक शरीर में जाति की कल्पना, ऊँच नीच का विचार भ्रम है। वह सब शक्ति का ही विजृम्भण है । आत्मा देह से भिन्न है । वह आनन्द स्वरूप है—ऐसा जो जानता है वही ब्राह्मण है । प्राण आदि अथवा नाग आदि पाँच वायुओं से प्रेरित यह शरीर अपने को कर्त्ता मानता है—यह भ्रम है । यह उसी प्रकार है जैसे जल के अन्दर चञ्चल चन्द्र बिम्ब को देखकर चन्द्रमा को चञ्चल मानना । सारा विश्व आत्मा के ऊपर उपाधि रूप है । 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से उसका निराकरण कर 'अहं ब्रह्मास्मि' ज्ञान करना चाहिये ।

शिव ने पूछा—आत्मा देह से भिन्न कैसे है? ब्रह्म का ज्ञान कैसे होता है? जगन्मयी ने उत्तर में कहा—अज्ञान से आवृत होने के कारण आत्मा पृथक् दिखायी देता है । जैसे बादल के हट जाने से सूर्य, उसी प्रकार अविद्या के हट जाने से सब कुछ ब्रह्म ही समझ में आता है ।

**चालिसवाँ पटल**—इस पटल में शिव शक्ति ज्ञान और कुलयाग का वर्णन है । प्रत्येक शरीर में पुरुष भाव शिव है, स्त्री भाव प्रकृति या शक्ति है । इन दोनों में कोई भेद नहीं है । एक के विना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं । चन्द्र और उसकी चन्द्रिका की भाँति दोनों अभिन्न हैं ।

एक ही चैतन्य जो कि शब्द-ब्रह्म है वर्ण मन्त्र विद्या आदि के भेद से प्रकट होता है । शक्ति की पूजा अनेक प्रकार से होती है । मन्त्र देवताओं के वर्णमय विग्रह हैं । उनका जप आदि उनकी पूजा है । दूसरी पूजा स्वर्णमय मूर्त्ति बनाकर की जाती है । तीसरी पूजा सोने या रत्नों के ऊपर यन्त्र बनाकर होती हैं । देवी का चौथा रूप गुप्त है । यह कौलमार्ग से सम्बद्ध है । इसलिये चौथी पूजा कौल साधक ही करते हैं । कौलमार्ग अत्यन्त दुर्गम है । योनि शक्ति है, लिङ्ग शिव है। रज शक्ति है, वीर्य शिव है । इस प्रकार जगत् शिवशक्ति से परिपूर्ण है । दोनों एक हैं । योनि के अन्दर लिङ्ग का लीन होना दोनों का एकीकार होना है। इसी के द्वारा मोक्ष होता है जगदम्बा के लिये इससे बढ़कर प्रीतिकारक संसार में कुछ नहीं है ।

शक्ति ने कहा—हे विश्वेश! मेरे अन्दर प्रवेश करो । ब्रह्मा मेरा बाँयाँ विष्णु मेरा दाँया स्तन पीते हैं । तुम मेरे अधरामृत को पियो । जिस प्रकार पतिहीन नारी सर्वकर्मविहीन होती है उसी प्रकार शक्ति के विना मन्त्री का प्रयास व्यर्थ होता है । भगलिङ्ग के संयोग से जो आनन्द मिलता है वही ब्रह्म है । शक्ति के साथ कामक्रीडा की समस्त क्रियायें आसन भूतशुद्धि प्राणायाम आदि मानी जाती हैं । प्रतिदिन ऐसा करने वाला जीवन्मुक्त होता है, असाध्य को सिद्ध कर लेता हैं। साधना की इस यात्रा में एक ही शक्ति पर्याप्त होती है ।

**इकतालिसवाँ पटल**—यहाँ प्रश्नोत्तर के द्वारा अनुत्तर के ज्ञान और उसकी प्रक्रिया की चर्चा है । पार्वती ने पूछा कि मन्त्र योग आदि का कारण क्या है? वाच्य शिव हैं वाचक शक्ति । प्रकाश शिव हैं विमर्श शक्ति तो क्या शिव शक्ति के अधीन हैं? शिव ने कहा—मैं सत् हूँ । तुम चित् हो । दोनों का संयोग ही सिद्धि है । जब दोनों एक हो जाते हैं तब इसे शाम्भव तत्त्व कहा जाता है ।

पार्वती के यह पूछने पर कि अनेक सकल निष्कल मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ मन्त्र कौन सा है? परमेश्वर ने उत्तर दिया कि सारे मन्त्रों के प्रतिपाद्य हमी दोनों हैं और हम दोनों का भी प्राप्य अनुत्तर तत्त्व है जो कि 'अहम्' के रूप में जाना जाता है। परामन्त्र का भी प्राप्य अनुत्तर ही है । इसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए ईश्वर ने कहा—अनुत्तर तत्त्व वाङ्मनोऽगोचर होता हुआ भी बिन्दु नाद और बीज रूप में तीन प्रकार का होता है । ये ही सत् चित् और आनन्द है । बिन्दु शिव का रूप है । उससे नाद उत्पन्न होता है । दोनों के समरस होने पर बीज बनता है । स्वर शिव है व्यञ्जन शक्ति है । दोनों को मिथुन भाव से देखने पर अनुत्तर तत्त्व का साक्षात्कार होता है । इससे मन्त्र और मन्त्री अभिन्न हो जाते हैं ।

अनुत्तर का साक्षात्कार होने पर सम्पूर्ण विश्व अपने अन्दर उसी प्रकार उत्पन्न और लीन होता है जैसे निर्मल आकाश में बादल । इसको जानने के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती । यह स्वप्रमाण है । चित् ही इसमें प्रमाण है। यह विश्व उसी चित् का स्फार है । यह शुद्ध तत्त्व शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्ध-विद्या के भेद से पाँच रूपों में स्फुरित होता है । माया के द्वारा सङ्कुचित होकर शिव ही जीव होता है । उस जीव में सङ्कोच के कारण किञ्चित्-कर्तृत्व किञ्चित्-ज्ञत्व आदि भाव आ जाते हैं । शेष सृष्टि का विकास सांख्य के अनुसार होता है ।

आगे चलकर इस पटल में अकार आदि वर्णों से सृष्टि की प्रक्रिया बतलायी गयी है । अ अर्थात् अनुत्तर की, इ = इच्छा से उ = उन्मेष होने पर आ = आनन्द, ई = ईषणा, ऊ = ऊर्मि, होती है । अ इ उ मिलकर त्रिकोण बनाते हैं। ये ही त्रिशूल हैं । जो द्वैतभाव को नष्ट कर देते हैं । इस प्रकार यह आदि-

क्षान्त मातृका ही सृष्टि की योनि है । स्वर बीज और व्यञ्जन योनि है । इन्हीं के संघट्ट से विश्व उत्पन्न होता है और अन्त में संविद् रूपी अग्नि में विलीन हो जाता है ।

**बयालिसवाँ पटल**—पार्वती ने वाणी आदि से सम्बद्ध प्रश्न किया तो ईश्वर ने उन प्रश्नों का उत्तर दिया कि वाणी मन से उत्पन्न होती है । प्राण आहार लेता है । मन पाप करता है । मन का अस्तित्व समाप्त होने पर पाप-पुण्य कुछ नहीं होता । जीव ही प्राण कहा जाता है । वह बाल के अग्रभाग का सौवा भाग है । सत्त्व रजस् तमस् से युक्त होकर यह अनेक प्रकार के भावों से युक्त होता है । किन्तु जब नाभिस्थ होता है तो निष्कल को जानकर मुक्त हो जाता है । श्वास निश्वास के द्वारा वह ऊपर नीचे चलता रहता है ।

इसी क्रम में भगवान् शिव ने सनत्कुमार के उपदेश की चर्चा की । इसमें ग्रन्थकार ने कठोपनिषद् एवं श्वेताश्वतर उपनिषत् के मन्त्रों को कुछ परिवर्तन के साथ उद्धृत करते हुए आत्मा के स्वरूप उसके गुण तथा कार्य का वर्णन किया तथा अपरोक्षनुभूति का स्वरूप बतलाया है कि जाग्रत आदि जो कुछ अवस्था दिखायी देती है 'अहं ब्रह्मास्मि' के अनुभव के बाद सब लुप्त हो जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि मैं ही अणोरणीयान् अपाणिपाद होते हुए जवन ग्रहीता इत्यादि हूँ । वेदों के द्वारा मैं ही वेद्य हूँ ।

अन्त में इस तन्त्र के अध्ययन की फलश्रुति वर्णित है कि इसका अध्ययन करने वाला अग्निपूत, सुरापान से पूत, कर्त्तव्याकर्त्तव्य से पूत, अगम्यागमन आदि आदि से पवित्र हो जाता है ।

# विषयानुक्रमणिका